R.S.

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परम ब्रह्मः तस्मै श्री गुरुवेनमः॥

शिव

वर्ष २ | मई १९५९ ई० | तरंग ३

❀ धन्यवाद का शब्द ❀

भव सागर अगम अथाह से, पार करा दिया सतगुरु दाता ने।
मुझ दीन अधीन को ठौर ठिकाने, लगा दिया सतगुरु दाता ने॥

संसार महा दुखदाई था, नहिं अपना कोई सहाई था।
निज दया से मेरा बिगड़ा काम, बना दिया सतगुरु दाता ने॥

मन चंचल था अज्ञानी था, अभिमानी मानी गुमानी था।
सुरति शब्द योग विधि से, निश्चल कर दिया सतगुरु दाता ने॥

घट अघट का भेद दिया मुझको, चरणों में अपने लिया मुझको।
सतसङ्ग के अमृत वचन सुना के, चिता दिया सतगुरु दाता ने॥

अब मैं चरणों का दास बना, सुख पाय अब सुख रास बना।
राधास्वामी धाम का देके पता, पहुँचा दिया सतगुरु दाता ने॥

३. "नेति" क्यों कहता है ? "एती" भाव को चित् दे सदा।
"नेति" है वैराग "एती," भाव से अनुराग कर ॥ ३ ॥
४. "नेति" "एती" दोनों कल्पित, इनका तो उत्थान है।
त्यागना हो त्यारा दोनों, नींद भव से जाग कर ॥४॥
५. राधा स्वामी संत सतगुरू, के बचन सुन प्रेम से।
पद कमल में सर झुका, भक्ती अटल वर माँग ॥५॥

तीसरी कथा

मनुष्य और उसकी छाया

ईश्वर ने मनुष्य को बनाया। देखा कि वह अकेला है, सोचा "क्या करूँ !" मनुष्य सूर्य के प्रकाश में घूम फिर रहा था। उसके शरीर की छाया पांव से लगी हुई नाच रही थी कभी छोटी होगई कभी बड़ी ! कभी दायें गई कभी बायें ! कभी इतनी घटी कि मनुष्य के पंजे से भी छोटी बन गई ! और कभी इतनी बढ़ी कि मनुष्य उसके सामने बच्चा प्रतीत होने लगा। जब वह छाया को पकड़ने जाता छाया फुदकती हुई आगे की ओर लम्बे डगभर कर भाग निकलती और जब यह उससे पीठ फेर कर भागता तो यह उसके पीछे दौड़ने लगती।

ईश्वर इसे देखकर हँसा। बात समझ में आगई। बोला "क्या तू चाहता है कि मैं तेरे लिये इसे पकड़ दूं ?" उस ने कहा "हां ! मैं अकेला हूँ। यदि यह साथ रहे और बोले तो मुझे सुख मिलेगा। यह सामिग्री इकट्ठा करेगी। उसकी सँभाल रक्खेगी और मैं अचिन्त रहूँगा।"

ईश्वर ने कहा "समझ बूझ कर बात कहो। यह तुझ से लपटेगी वह बोला 'मैं इसे लिपटा रक्खूँगा।"

ईश्वर मुसकराया "यह तुझे हँसायेगी रुलायेगी।" यह बोला

❀ क्षमा याचना ❀

इस अङ्क के छपने में प्रेस के कार्यकर्त्ताओं की असुविधा के कारण देर होगई अतः समय पर न छप सका । पाठकगण इसके लिए क्षमा करेंगे। भविष्य में समय पर भेजने का यथाशक्ति प्रयत्न किया जायगा ।

❀ निवेदन ❀

कुछ ग्राहक महोदयों का गतवर्ष का वार्षिक मूल्य अभी तक नहीं आया है अतः वे इस वर्ष के मूल्य सहित तुरन्त भेजने की कृपा करें ।

इस से अगले अङ्क में अध्यात्म विद्या के प्रेमियों के लिये नित्य प्रति सोचने समझने, मनन करने और अमल करने की पूरी सामिग्री होगी । जिनकी पूरी जानकारी न होने अथवा अमल न होने से साधन में आगे बढ़ने में कठिनाइयां आती हैं और लोग या तो गुरुओं को दोष देते हैं या निराश हो बैठते हैं आशा है पाठकगण इससे लाभ उठावें ।

प्रेमी पाठकों से यह भी प्रार्थना है कि वे निष्काम भाव से ऐसी अमूल्य पुस्तकों का पठन पाठन दूसरे सज्जनों से भी करायें ताकि वे भी इनसे लाभ उठा सकें । यदि उनकी रुचि होगी तो फिर वे स्वयं भी इनके ग्राहक हो जायेंगे ।

विनीत—

देवीचरन मीतल.

उपहार

रानी

गज़राबाई

पुत्र बधू

के

हितार्थ और लाभार्थ

भूमिका

नन्दू भाई का विवाह गतवर्ष गदवाल (समस्तान) राज हैदराबाद में हुआ। मैं भी बरात में गया हुआ था। विवाह के पीछे दूल्हा दूल्हिन दोनों मेरे चरणों में गिरे, मैं बहुत प्रसन्न हुआ। दुल्हन की आयु नव वर्ष से अधिक न रही होगी। भोली भाली! सीधी साधी! मैंने कहा "क्या तू रानी है?" वह बोली "मैं रानी हूँ।" मैंने पूछा "तू मेरे घर चल कर रहेगी और गदवाल की चिन्ता तो न करेगी?" उसने उत्तर दिया "मैं चलूँगी। वहाँ चलकर रहूँगी। मुझे चिन्ता न होगी।" मैं प्रसन्न हो गया।

इस साल मैं भाई जी के साथ उसे धाम में लेजाने के लिये हैदराबाद आया। लड़की अभी बहुत छोटी है। साहसी और उत्साही तो अवश्य है किन्तु लड़की है। देखें साथ चलती है या अब के भी उसके माँ बाप रोकते हैं।

एक दिन भाई जी एक सुदन्र छोटी सी नोटबुक लाये। उसमें सुनहरे बेल बूटे बने थे। मैंने अपना फ़ोटो उस पर लगा दिया। फिर सोचने लगा इसमें क्या लिखूँ। सोचते सोचते यह बात समझ में आई कि नई और छोटी दुलहन के लिये छोटी छोटी कहानियाँ शब्दों के साथ लिख दूँ। लेखनी उठाई। लिखना आरम्भ दिया।

आशा है दुल्हन इसे प्रेम से पढ़ेगी और जब यह छप जायगी पढ़ने वाले भी इसे लाभदायक पायेंगे।

कहानियों की इस छोटी गुटका बनाने की यह छोटी कहानी है। यह मेंडचल में लिखी गई थी नई नवेली दुलहन के हितार्थ!

५ फर्वरी
सन् १६२४

—शिव

हितोपदेश

पहली कथा

कुटुम्ब

ईश्वर ने कुटुम्ब रचा। जीव जन्तु बन गये। मनुष्य कुल उत्पन्न हुआ और सब रहने सहने लगे। ईश्वर देखने आया। वह लड़ रहे थे। मिल जुल कर रहने की शिक्षा देकर चला गया।

यह मिलने को तो मिले परन्तु लड़ाई बन्द नहीं हुई।

ईश्वर फिर आया। इनकी दशा देखकर प्रसन्न नहीं हुआ। बोला "मिलजुल कर रहो।"

एक बोला "इसे निकाल दो शान्ति आजाये।" ईश्वर ने कहा "किसे निकालूँ! किसे रक्खूं। कुटुम्ब तो कुटुम्ब है।" कोई न समझ सका वह लौट गया।

फिर आया और वही दृश्य आखों में आया। फिर वही उलहना और निकालने की प्रार्थना!

ईश्वर बोला "कहाँ निकालूँ? यह कहाँ रहे? कुटुम्ब से बाहर कुटुम्ब तो नहीं रह सकता।"

फिर भी समझ नहीं आई और वह चला गया।

कुछ दिनों पीछे फिर आया और वही लड़ाई झगड़ा! और वही बात!

ईश्वर बोला "निकालने में निर्बलता और साथ रहने में बल रहता है।"

किसी ने नहीं समझा और वह चला गया।

फिर आया। इस बार बहुत से मनुष्यों ने मिलकर उस एक की निन्दा की। ईश्वर बोला "तुम को समझ नहीं है। सब बुन्द मिलकर समुद्र होते हैं। एक के निकल जाने से समुद्र समुद्र न रहेगा।" यह कहकर वह फिर चला गया। किसी ने भी बात न समझी।

जब आया फिर वही ऊधम! तब उसने सब को मिलाकर कहा "सत्सङ्ग करो। सत् जीवन है," और चला गया, किसी ने फिर नहीं समझा।

सातवीं बार आकर वही उत्पात देखा और निकालने की प्रार्थना सुनी। बोला "शब्द का साधन करो, मेरा रूप देखो, मेरा नाम लो।"

सब घबराये हुये थे। बात मानी। उसकी सुनी। ईश्वर का रूप देखा और जिसकी निन्दा वह करते थे उसे ईश्वर में गुथा हुआ पाया। सोचा "यह तो उसी में है। उसी का है। उसी से है। उसके निकाल देने से ईश्वर का एक अङ्ग निकल जायेगा और हानि पहुँचेगी।" तब उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न हुआ। एक दूसरे को प्यार करने लगे और सहज में शान्ति आगई। अब ईश्वर का कुटुम्ब सुख और आनन्द से रहने लगा और निन्दा और आपस की खटपट जाती रही।

शब्द

१. प्रेम औषध, ईर्षा और, द्वेष मनके रोग हैं।
रोग जबै हों दुख बिपत, आपत कलेश और सोग हैं॥ १॥
२. सब हैं उसके वह है सबका, उससे न्यारा कौन है!
भूल में कैसे पड़े ! भरमे हुये सब लोग हैं॥ २॥
३. फूट का फल दुख है दुख, में सत्त का जीवन नहीं।

सङ्ग सत् का फल चखो, उस ही में सुख के भोग हैं ॥ ३ ॥
४. राधास्वामी ने दिखाया, प्रेम का रास्ता हमें।
प्रेम में सुख शान्ती, आनन्द के संयोग हैं ॥ ४ ॥

दूसरी कथा

जगत् वाटिका

ईश्वर ने जगत् की वाटिका बनाया। नाना प्रकार के फूल बूटे और पौधे लगाये। घास पात कांटे कटीले उगाये। वाटिका रमणीक! देखने में मनोरंजक और मनोहर! इसमें जहाँ देखो सुन्दरताई का दृश्य आँखों को आकर्षित करता था। उसमें सब कुछ था। वाटिका सुन्दर! शोभा धाम! और सब विधि से पूर्ण थी। कोई उसे देखकर यह नहीं कह सकता था कि इसमें यह है और यह नहीं है। बहुभाँति के पक्षी पखेरू वृक्षों की शाखाओं पर कुलेल किया करते थे। फूलों पर मक्खी और भँवरे मँडलाते रहते थे। जीव जन्तुओं ने उसे सुखदायक समझ कर उससे जी लगाया। उसमें पाँच प्रकार के पदार्थ शरीरधारी होकर अपनी अपनी शोभा दिखाते रहते थे। यह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध थे।

ईश्वर ने मनुष्य से कहा "जा! इस वाटिका को देख। और उसको देखकर जीवन, बुद्ध और सुख का भोग प्राप्त कर।" मनुष्य आया। कुछ दिनों तक तो वह उसका सुख भोगता रहा। फिर संयोग वश वह उसके दोष निकालने लगा और आप ही आप दुखी हो गया।

ईश्वर ने मनुष्य की दशा देखी। पूछा "इस सुख की वाटिका में आकर तू दुखी क्यों हो गया? यहां तू दुख भोगने के लिये तो नहीं आया था! तुझे हो क्या गया?"

मनुष्य बोला तेरी बाटिका बहुत अच्छी है परन्तु तू ने समझ बूझकर काम नहीं किया। मुझसे सम्मति ली होती तो मैं सुमति देकर इसे और भी अच्छा बनवाता।"

ईश्वर हँसा "अब क्या हुआ है? यदि तू इसे और अच्छा बना सकता है तो अब काम में लग जा। मैं तुझे आज्ञा देता हूँ। परन्तु यह तो बता दे कि इसमें त्रुटी क्या है?"

मनुष्य ने कहा "बाटिका में फूल ही फूल होने चाहिये। काँटे का नाम न रहना चाहिये।"

ईश्वर मुसकराया "अच्छा! काँटों को काटकर निकाल दे!"

मनुष्य ने ऐसा ही किया। कुछ दिनों तक तो वह फूलों की शोभा देख देख कर मन में फूला न समाया। फिर उससे जी भर गया। घबराया, उकताया और दुखी हुआ।

ईश्वर आया। उसकी दशा देखी और पूछा "क्या है?"

यह बोला "वाटिका बिगड़ गई।"

ईश्वर ने कहा "फूल की शोभा काँटों ही से थी। तू ने काँटे काट डाले। अब एक ही पदार्थ के रहने से तेरे विचार बुद्धि में बिकलता आगई। वाटिका की शोभा यही है कि उसमें सब कुछ हो तब तो वह पूर्ण है नहीं तो अधूरी और अपूर्ण! यह वाटिका तो नहीं रही। अब फुलवारी रह गई।"

मनुष्य ने कहा "फूल इतने लाभदायक नहीं होते। केवल सुगन्ध देते हैं। मैं फूल के बृक्ष लगाना चाहता हूं।"

ईश्वर हँसा "फिर तुझे रोकता कौन है! वह भी कर देख!"

मनुष्य ने वैसा ही किया। फल खाये। घूमा फिरा। जिन बृक्षों में फल नहीं लगते थे सब काट गिराये। अन्त में उससे भी उकता गया और दुखी हुआ।

ईश्वर फिर आया। पूछा "अब तो तू सुखी है?"

यह बोला "नहीं!"

ईश्वर ने फिर प्रश्न किया "क्यों ?"

यह कहने लगा "फल ही फल रह गये हैं।"

ईश्वर ने कहा "तू ने भूल की। यह वाटिका नहीं रही। फुलवारी हो गई। फुलवारी भी नहीं! पतवारी भी नहीं! कटवारी भी नहीं! अधूरी वस्तु सुखदायी नहीं होती।"

यह कहकर ईश्वर चला गया।

मनुष्य ने काट छांट से बहुत काम लिया परन्तु उसे सुख नहीं प्राप्त हुआ। तब महा दुखी और व्याकुल हुआ।

ईश्वर ने आकर उस की दशा देखी। पूछा "क्यों! अब तो तू सुखी है ?"

इस ने उत्तर दिया "मैं भ्रम में पड़ गया। जो कुछ तू ने किया था वही ठीक था।"

ईश्वर ने प्रसन्न हो कर कहा "मुझे देख।"

उसने उसे देखा। ईश्वर वाटिका स्वरूप प्रतीत हुआ और उसमें सब कुछ था। चकित हुआ। फिर ईश्वर ने कहा "अपने को देख।" उसने दृष्टि फेर कर अपने अन्तर में देखा। वह भी आप वाटिका के रूप का निकला। तब तो वह और भी चकित हुआ। ईश्वर बोला "यह वाटिका तेरा ही रूप अथवा तेरे रूप की छाया है। इसका तिरस्कार न कर। न इसके किसी पदार्थ से घृणा कर। जैसा है वैसा रह और तू सुखी रहेगा। यदि वहाँ एक की आवश्यकता है तो सब की आवश्यकता है।"

तब मनुष्य को पूर्ण सुख प्राप्त हुआ।

शब्द

१. प्यार कर सब से, भरम की, द्वेष दृष्टी त्याग कर।
रूप है यह जग्त तेरा, इसी से अनुराग कर ॥ १ ॥
तू यहाँ है तू वहाँ है, लोक में, परलोक में।
किस जगह जायगा, इस रचना को कह दे भाग कर ॥ २ ॥

३. "नेति" क्यों कहता है ? "एती" भाव को चित् दे सदा ।
"नेति" है वैराग "एती," भाव से अनुराग कर ॥ ३ ॥
४. "नेति" "एती" दोनों कल्पित, इनका तो उत्थान है ।
त्यागना हो त्यारा दोनों, नींद भव से जाग कर ॥४॥
५. राधा स्वामी संत सतगुरू, के बचन सुन प्रेम से ।
पद कमल में सर झुका, भक्ती अटल वर माँग ॥५॥

तीसरी कथा

मनुष्य और उसकी छाया

ईश्वर ने मनुष्य को बनाया । देखा कि वह अकेला है, सोचा "क्या करूँ !" मनुष्य सूर्य के प्रकाश में घूम फिर रहा था । उसके शरीर की छाया पांव से लगी हुई नाच रही थी कभी छोटी होगई कभी बड़ी ! कभी दायें गई कभी बायें ! कभी इतनी घटी कि मनुष्य के पंजे से भी छोटी बन गई ! और कभी इतनी बढ़ी कि मनुष्य उसके सामने बच्चा प्रतीत होने लगा । जब वह छाया को पकड़ने जाता छाया फुदकती हुई आगे की ओर लम्बे डगभर कर भाग निकलती और जब यह उससे पीठ फेर कर भागता तो यह उसके पीछे दौड़ने लगती ।

ईश्वर इसे देखकर हँसा । बात समझ में आगई । बोला "क्या तू चाहता है कि मैं तेरे लिये इसे पकड़ दूं ?" उस ने कहा "हां ! मैं अकेला हूँ । यदि यह साथ रहे और बोले तो मुझे सुख मिलेगा । यह सामिग्री इकट्ठा करेगी । उसकी सँभाल रक्खेगी और मैं अचिन्त रहूँगा ।"

ईश्वर ने कहा "समझ बूझ कर बात कहो । यह तुझ से लपटेगी वह बोला 'मैं इसे लिपटा रक्खूँगा ।"

ईश्वर मुसकराया "यह तुझे हँसायेगी रुलायेगी ।" यह बोला

"मैं हँस लूँगा। रोलूँगा।"

ईश्वर ने कहा " यह चञ्चल होगी। तुझे भी चञ्चल बनायेगी "वह बोला मैं चञ्चल होलूँगा।"

ईश्वर ने हँस कर उसे हाथ लगाया और वह स्त्री के रूप की होगई। ईश्वर ने उसे पकड़ कर मनुष्य को दिया और आप अन्तर्ध्यान होगया।

स्त्री को पाकर मनुष्य मन में बड़ा प्रसन्न हुआ। साथ लाया, घर बनाया और रहने लगा परन्तु थोड़े दिनों पीछे वह उससे घबरा गया। ईश्वर को स्मरण किया। ईश्वर ने प्रगट होकर पूछा "अब क्या चाहता है ?" उसने उत्तर दिया "यह बड़ी बातूनी है। रात दिन बकबक करती रहती है। मैं इसके बकवास से उकता गया, इसे फिर छाया बना दे।" ईश्वर ने हाथ लगाया। वह फिर छाया हो गई। यह प्रसन्न होकर आया। घर में उदासी छायी हुई थी। घबराया और दुखी हुआ। एक से दो अच्छे थे। बात चीत तो कम से कम होती थी।

ईश्वर का ध्यान किया। वह प्रगट होकर कहने लगा "अब क्या है ?" यह बोला " छाया को पकड़ दे। उसके बिना सुख नहीं।" उसने पकड़ दिया। अब यह दोनों फिर साथ साथ रहने लगे।

कुछ दिनों पीछे स्त्री के गर्भ से कई पुत्र पुत्री उत्पन्न हुये। इनके पालन पोषण के लिये पुरुष को उद्यम करना पड़ा। दुःख और कष्ट सहना पड़ा। फिर ईश्वर को बुलाकर कहा "यह तो महा दुखदायी हुई। ले जा! मैं इसे नहीं चाहता।"

ईश्वर को अब की बार क्रोध आया "मूर्ख! मैंने पहले ही तुझे बता दिया था। यह बढ़ेगी, घटेगी, दौड़ेगी, रुकेगी और तेरे पीछे पड़ेगी। अब मैं तेरी न सुनूँगा। मुझे और भी काम काज करने हैं। वह करूँ या कि स्त्री और पुरुष के नित्य के झगड़ों को

सुना करूँ। दूर हो! जा, जो तेरी समझ में आवे कर। मैं अब कुछ न सुनूँगा।" "गले पड़ा ढोल बजाये सिद्ध।"

तब से वह निराश हो गया। कुछ दिनों तो जिया। फिर बुढ़ापा आया रोगी हुआ और रोते हुये चल बसा।

ईश्वर हँसा "मूर्ख को छाया के वश रखने की भी बुद्धि नहीं थी। मैं क्या करूँ! मेरा कोई दोष नहीं था। उसने जैसा किया वैसा पाया!" और ईश्वर चुप हो रहा।

शब्द

१. प्रेम छाया से किया, छाया का गुण जाना नहीं।
तू ने अपना और उसका, रूप पहिचाना नहीं ॥१॥
२. ब्रह्म में माया है शक्ती, शक्ति दुखदायी नहीं।
भरम से बलवान ने, बल पाके बल माना नहीं ॥२॥
३. माया छाया एकसी, दौड़ो तो दौड़े और चले।
रुकने से रुकती है, इससे भय कभी खाना नहीं ॥३॥
४. जान लो पहँचान लो, और अपनी शक्ती मानलो।
मानकर पहिचान कर, भ्रान्ति चित् लाना नहीं ॥४॥
(५) राधास्वामी सङ्ग कर, कुछ दिन, कि तुझको ज्ञान हो।
ज्ञान पाकर भूल के चक्कर, में फिर आना नहीं ॥५॥

चौथी कथा

रचना की सम्मिलित अवस्था

ईश्वर की दया से मनुष्य ने अपनी आँख खोली। ईश्वर की रचना की वाटिका देखी। प्रसन्न हुआ। वाह! वाह क्या कहना है। कमल का फूल खिला है। भँवरे मँढला रहे हैं मक्खियां भिना भिना रही हैं। कोयल चहक रही है। चकोर घूम रहे हैं कबूतर 'गुटुर गूँ' कर रहे हैं। वाटिका से निकल कर चीते, हाथी, गेंडे, हिरन, बारह सिंहे, मोर, बकरी, गाय भेंस सब कुछ देखे। बहुत सुखी हुआ।

इस सुख की दशा में उसे ईश्वर मिला। पूछा "कैसे है ? यह बोला "आनन्द ही आनन्द है। तू बड़ा कारीगर है। कैसी अच्छी रचना की है ! वाह री तेरी चतुराई ! धन्य है तेरी प्रभुताई ! तेरी महिमा का गीत कौन गा सकता है ! "

ईश्वर प्रसन्न होकर बोला "जो तू कहे तो मैं इस विचित्र रचना की सम्मिलित अवस्था को पकड़ कर तेरे साथ कर दूँ।" यह बोला "भलाई और पूछ पूछ ! इससे बढ़कर और क्या हो सकता है !"

ईश्वर ने हाथ बढ़ाया। सारी रचना को अपनी मुट्ठी में किया। कमल की सुन्दरताई, चकोर की चाल, मक्खी की भिनभिनाहट, कबूतर का गला, चीते की कटि (कमर), हाथी की गम्भीरता, बारहसिंहा की सुन्दरताई का घमण्ड, मोर की स्वप्रशंसा, हिरन की आँख, गेंडे का बड़प्पन, बकरी की मैं, मैं' कोयल की 'तू तू' गाय की सहन शक्ति, चन्द्र की स्वरूपता, सूर्य्य की चमक ली और सब को मिला जुलाकर स्त्री के रूप में बनाकर खड़ी कर दी। मनुष्य से कहा ! "ले जा ! यह तेरे साथ रहेगी।"

उस ने धन्यवाद देकर उसे अङ्गीकार किया। घर बनाया और उसके साथ रहने लगा ! भोग विलास किया।

स्त्री तो स्त्री है। जैसा उसका स्वभाव वैसे उसके काम ! कभी मक्खी की तरह भिनभिनाती। कभी कोयल जैसी 'तू तू' और बकरी जैसी 'मैं मैं' करती। चीते जैसी कमर लचकाती। हिरन जैसी आँख दिखाती। मनुष्य उसकी चाल ढाल देखा करता। मुँह को बन्द रखता। आँख और कान फेर लेता।

स्त्री ने मन में विचारा—"यह अच्छा पुरुष मिला। मेरा मन्त्र इस पर नहीं चलता और न यह दाव में आता है।" सब कुछ कर बैठी। उस की कुछ न चली।

तब एक दिन निराश होकर अपने पति से कहा "मैं तेरी अर्द्धाङ्गिनी हूं तू क्यों इस प्रकार रहता है ?"

मनुष्य हँसा "सुन सुन्दरी ! मैं तेरा पति हूँ। तू मेरी स्त्री है। मैं रूप और तू छाया है। तू मेरे प्रेम की भूखी है। मुझ से प्रेम ले। मैं तुझे प्यार करता हूँ। बस इतना हो बहुत है। इस से अधिक तू क्या चाहती है ?

यह बोली "तू मेरी सुनी बात अनसुनी क्यों कर देता है ? तू देखता हुआ अनदेखता बना रहता है। बोलता हुआ अन बोला रहता है। यह बात मेरी समझ में नहीं आती।"

मनुष्य ने कहा "तू इसे जानकर क्या करेगी ? अपना काम कर और जैसी है वैसा व्यवहार किया कर। मैं तेरे रूप को जानता हूं और अपना रूप भी पहिचानता हूँ। चल घर का काम काज कर। बाल बच्चों की रक्षा और सँभाल कर। जितना घर बार बढ़ाते बने बढ़ा। मैं तेरे साथ हूं और साथ कभी न छोड़ूँगा तेरा मेरा साथ ईश्वर ने किया है !"

स्त्री ने चकित होकर पूछा "मेरा रूप क्या है ? और तेरा रूप क्या है ?"

यह हँसा "प्यारी ! इसको जान कर क्या करेगी ! द्रौपदी का चीर ढका रहे तब ही अच्छा है। क्या मैं दुश्शासन हूं ?"

वह बोली "दुश्शासन द्रौपदी का चीर नहीं खींच सका परन्तु द्रौपदी तो अर्जुन के सामने नङ्गी रहती थी। वह उसका पति था।"

इसने थोड़ी देर सोचा "सच है परन्तु अर्जुन ने द्रौपदी का चीर कभी नहीं उतारा। काम से काम रक्खा। क्या तू इसे नहीं जानती ?"

यह हँसी 'ठीक है परन्तु मैं स्त्री हूँ। तू तिरियाहट को

जानता है। अपने और तेरे रूप समझे बिना मैं चैन न लेने दूँगी।'

पुरुष अपनी बारी पर हँसा 'मैं तुझे तेरा रूप न बताऊँ तो तू क्या करेगी ?'

स्त्री बोली 'जान दे दूँगी '

यह और भी हँसा 'तुझ में जान कहां है जो जान दे देगी ! जान तो मुझमें है। तू मेरी जान से जीती, मेरे बल से बलवन्ती, मेरे धन से धनवन्ती और मेरी बुद्धि से बुद्धिवती है। तेरा तुझ में क्या है ? कुछ भी नहीं ! तूने मुझसे संयोग किया। मेरे रूप को अपने गर्भ में ढाल कर पुत्र बनाया। तेरा तो यहां कुछ भी नहीं। सोच तो सही ! तू कैसे जान देगी ?'

वह घबड़ाई 'तुझे बातें बहुत आती हैं। अच्छा यह सब सही। मेरा रूप मुझे समझा दो फिर मैं चुप रहूँगी।'

यह बोला 'सुन ले ! तू जीव जन्तु सबकी छाया लेकर बनाई गई है। तेरी भिनभिनाहट मक्खी की है। मक्खी के भिनभिनाने से मुझे क्या ! तेरी 'मैं मैं' बकरी के बोल की छाया है। जितना जी में आवे "मैं मैं" किया कर। मुझे क्या ! तेरी चतुराई लोमड़ी के धोके की छाया है। तेरी अपनी प्रशंसा करना मोर की सुन्दरताई की छाया है..................।"

वह इतना ही कहने पाया था कि स्त्री की दशा बिगड़ गई बोली "बस बस ! अब अधिक बात न कर।"

इसने कहा "तेरा चंचलपना बादल की छाया है। तेरी आँख हिरन की आँख की छाया से बनी है...............।"

स्त्री ने कहा "बस बस ! अब मुँह बन्द करले। मैं अब सुनना नहीं चाहती।"

यह बोला "अपना रूप आज समझ ले कि तू क्या है ! फिर तुझे पूछने की आवश्यकता न रहे।"

इस से लज्जित होकर सर झुका लिया मन ही मन कहने लगी कि "इस पुरुष ने तो मेरा पता पा लिया। अब चुप के रहने ही में भलाई है।" फिर पाँव पर गिरकर उससे क्षमा मांगी और बुरे भले सब दशाओं में उसका मुँह देखकर तब उसके साथ रहने लगी और उनके बीच फिर अनबन नहीं हुई। वह उसे प्यार करता परन्तु वह पुरुष का प्यार था अनाड़ी का नहीं। फिर तो वह भी आज्ञाकारी हो गई और यह आज्ञा पालना नारी का था। नर नारी दोनों प्रसन्न चित्त सुख भोगने और मङ्गल जीवन जीने लगे।

शब्द

१. ब्रह्म में माया है यह, उस से अलग होती नहीं।
चाँद और सूरज से न्यारी, दोनों की जोती नहीं ॥१॥
२. जागता है ब्रह्म तब, माया है उसकी जागती।
भिन्न होकर ब्रह्म से, माया कभी सोती नहीं ॥२॥
३. बल सदा बलवान में, और शक्ति शक्तीवान में।
शिव से शक्ती न्यारी होकर, हँसती और रोती नहीं ॥३॥
४. सत् में जो सत्ता है वह, सत्ता नहीं सत् से पृथक।
सत् की सत्ता साथ है, और साथ से खोती नहीं ॥४॥
५. राधास्वामी सङ्ग में, आई समझ अब रूप की।
भिन्न सागर से कभी, मूँगा नहीं मोती नहीं ॥५॥

पांचवीं कथा

गुरु महात्म

ईश्वर ने देखा कि मनुष्य में ममता बड़ी है। और वह अहँकार का पुतला बना है, जिस कारण से संसार में वह दिन प्रतिदिन बड़ा उत्पात मचाता रहता है सोच समझ कर उसने

परिणाम यह निकाला कि मनुष्य मनमत है। यह मनमता ही उसके कुराह चलने का मुख्य कारण है। तब उसने गुरुमत की प्रणाली चलाई। उससे बहुत मनुष्य सुधर गये। परन्तु उनमें ऐसे भी लोग थे जो गुरुमत के अनुयायी नहीं थे। उनमें केवल साधारण बुद्धी ही वाले नहीं थे किन्तु ऋषी मुनी भी थे। नारद ऋषी भी जिनकी भक्तों में बड़ी श्रेष्ठता और मुख्यता मानी जाती है इसी प्रकार के थे।

नारद आदि भक्त कहलाते हैं। उनके विषय में कहा जाता है कि यह अपने तपोबल से सदेह ईश्वर धाम को चले जाते थे और उसका दर्शन कर आते थे। ईश्वर की दृष्टी नारद की ओर गई और सबसे पहले इन ही का उद्धार करना चाहा।

दैव संयोग! जिस दिन ईश्वर के मन में यह संकल्प उत्पन्न हुआ, उसी दिन नारद जी देवलोक में ईश्वर के पास पहुंचे। ईश्वर ने इनकी आवभगत की, आसन दिया, बिठाया प्रसन्न चित्त होकर बातचीत की, परन्तु ज्यों ही नारद नमस्का करके बिदा हुये उनके पीठ फेरते ही देवगण को आज्ञा दी कि जहाँ नारद जी बैठे थे उस जगह को गोवर से लीप दो, ऐसा ही किया गया। नारद अभी दूर नहीं गये थे इस आज्ञा को सुन लिया पीठ फेरी फिर ईश्वर के सन्निकट आये, देखा कि इनके बैठने की जगह लिपी हुई है, चकित हुये कुछ देर चुप चाप रहे फिर पूछा "प्रभो! मेरे बैठने की जगह क्यों लिपाई गई।

ईश्वर बोला सुनो नारद! तुम ज्ञानी ध्यानी पंडित शास्त्रज्ञ सब कुछ हो, परन्तु मन मत हो, गुरुमत नहीं हो, अपनी दिलकश बुद्धी से तुम ज्ञान को प्राप्त हुये हो तुम भक्त भी हो, सच्चे तपस्वी भी हो अपने तप के पराक्रम से जब तुम्हारी इच्छा होती है मुझे प्राप्त कर लेते हो, यह मैं मानता हूँ, पर गुरुमत न होने के कारण मैं तुमको पवित्र नहीं समझता, तुम जहाँ बैठते वह ही जगह अपवित्र हो जाती है, इसलिए मैंने उसे लिपा कर पवित्र कर दिया।"

नारद जी को आश्चर्य हुआ, पूछा, "भगवन् ! यह सच है कि मैंने किसी को गुरु नहीं धारण किया है, क्या आपकी भक्ती मुझे पवित्र नहीं कर सकती ?"

ईश्वर ने उत्तर दिया, "नारद ! तुम समझदार होते हुये कैसी अन समझी की बात करते हो, तुम किसकी भक्ति करते हो, मेरी या और किसी की ? यदि मेरी भक्ती करते हो तो समझ लो मैं सूक्ष्म तत्व हूँ, और तुम स्थूल तत्वों से बने हो, सूक्ष्म और स्थूल में भेद रहता है और उनमें परस्पर प्रेम भाव नहीं हो सकता, भक्ती प्रेम का नाम है, मनुष्य मनुष्य में प्रेम सम्भव है परन्तु देवता और मनुष्य में प्रेम कैसा ! यह प्राकृतिक नियम है, इसके विपरीत कहीं भी न देखोगे, इसलिये जीव और ईश्वर का प्रेम कल्पित, मिथ्या और झूठा है तुम सोचो जब तक स्त्री पुरुष मनुष्य दशा में हैं, तब तक उनमें परस्पर प्रेम है यदि इनमें से कोई मर जाय और किसी पर प्रगट हो तो वह डर के मारे भाग जायगा। इसी प्रकार और बातों को भी जान लो"

नारद की आँखें खुलीं, पूछा, "यह तो सच है, आपका कथन असत्य कदापि नहीं होता, फिर मनुष्य किसकी भक्ती करे।"

ईश्वर बोला, "सुनो नारद ! मनुष्य को गुरु की भक्ती करनी चाहिये, और केवल यही भक्ती लाभदायक होगी, दूसरे की भक्ती से कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा।"

नारद ने पूछा, तो क्या देवताओं और ईश्वर ब्रह्म की भक्ती को तिलांजली देना चाहिये ? देव पूजा की प्रणाली चल गई है, उसे कैसे मिटाया जायगा।"

ईश्वर हँसा, गुरु ही को सब कुछ समझ ले। प्रणाली चाहे रहे अथवा न रहे, गुरू में सबको आरोपण कर लेने से प्रणाली को भी धक्का नहीं पहुंचता, कहा गया है :—

(१) अखण्ड मण्डलाकारम् व्यातम ये न चराचरम्
तत्पदम् दृष्टितम ये न तस्मै श्री गुरुवे नमः
(२) गुरु ब्र्ह्मा गुरु विष्णु गुरूर्देव महेश्वरः
गुरु साक्षात पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः

नारद बोले "ज्ञान द्वारा आप मुझको प्राप्त हुये हो, ज्ञान दृष्टी सूक्ष्म है इसलिये सूक्ष्म सूक्ष्म का मेल हो सकता है।"

ईश्वर ने कहा यह बात ही बात है, जिस ज्ञान की तुम बड़ाई कर रहे हो वह मनमता, अहंकार सम्मिलित है, यह तुम्हारी युक्ती भी उसी के अनुसार है। यदि तुम मेरे भक्त होते तो तुममें श्रद्धा होती, मेरी बात मानते, वाद विवाद अथवा सम्वाद में नहीं पड़ते। तुम आप अपनी युक्ती से अपनी भक्ती का खण्डन कर रहे हो।

नारद चकित हो कर बोले, "आप ही को मैंने गुरू मान रक्खा है।"

ईश्वर मुस्कराया, "मनुष्य का गुरू तो जब होगा मनुष्य ही होगा, मैं मनुष्य का गुरू नहीं हो सकता, जो लोग पोथी पढ़ कर मुझे गुरू मानते हैं वह भूल में पड़े हैं, मैं उन्हें यथार्थ दृष्टि से प्राप्त नहीं होता हूँ; और तुम अपने विषय में भी ऐसा ही समझो। निगुरे को मेरी सभा में जगह नहीं मिलती। तुम मनमता के तपोबल से लाख मुझे प्राप्त समझो परन्तु मेरे और तुम्हारे बीच में सदा भेदभाव रहेगा, जैसा अब भी है। यदि तुम मेरे भक्त होते तो मेरे और तुम्हारे रूप में भेद न होता, और न इस बकवास की आवश्यकता होती।

कबीर निगुरा ना मिले, पापी मिले हज़ार।
यक निगुरे की पीठ पर, लख पापी का भार॥

नारद बोले, "भगवान ! फिर क्या करूँ कि पवित्र हो जाऊँ ?"

ईश्वर ने कहा, "जाओ मनुष्यों में गुरू खोजो, मनमता छोड़ो। गुरु मता धारण करो, तब काम चलेगा"

नारद बोले, मैं कैसे और कहाँ ढूँढूँ"

ईश्वर ने कहा, "प्रातः काल उठ कर गंगा के तट पर जाओ जो पहला मनुष्य तुम्हारी दृष्टि में आवे, उसी से गुरु दीक्षा लो"

यह कह कर ईश्वर उसी समय अन्तर्ध्यान हो गया और नारद लज्जित हो कर पृथ्वी मंडल पर चले आये।

(२)

नारद के मन में ग्लानि आई, ज्यों, त्यों सोच बिचार में रात्रि व्यतीत की, गजरदम प्रातःकाल उठे, और आँखें मलते हुये गंगातट की ओर चले, देखते क्या हैं एक मछुआ माझी कंधे पर जाल रखे हुये सामने से आ रहा है, इनके चित्त में घृणा उत्पन्न हुई, सोचा, "बुरा शगुन हुआ, यह मछुआ अपढ़ और असभ्य मुझ जैसे ज्ञानी का गुरू कैसे हो सकेगा ?" पीठ फेरी, उलटे पाँव चल खड़े हुये।

पीछे से कान में भनक पड़ी, "यह नारद कैसा मूर्ख और अज्ञानी है जिसे ईश्वर के बचन पर भी विश्वास नहीं है, आया था गुरू धारण करने और मनमता के संस्कार दग्ध करने और योंही लौटा चला जा रहा है।"

नारद को आश्चर्य हुआ, मुंह फेरा, मांझी के पाँव पर गिरे अपराध की क्षमा चाही, पूछा, 'आप कौन हैं ?"

मांझी बोला, "मैं प्रश्नोत्तर के लिए इस समय उद्यत नहीं हूं।"

नारद ने कहा, "मुझे अपना दास बनाइये।"

और उसी समय उस मांझी ने उन को दीक्षित कर मुसकराते हुये कहा, "ऐ नारद ! तू ने गुरू धारण कर लिया,

अब गुरू मत हो कर जो प्रश्न करना है कर। अब उत्तर देने से मैं न कतराऊँगा।"

नारद बोले, इस गुरुमता से लाभ क्या है ?"

मांझी ने कहा, "मनमता और अहंकार को तोड़ना, जिस से इसका किंचित दोष मन में न रहे, नहीं तो मनुष्य आत्मिक अवस्था को प्राप्त न कर सकेगा।"

नारद ने कहा, "सच है, किन्तु क्या ज्ञानी का गुरु कोई ऐसा मनुष्य भी हो सकता है जो शास्त्रज्ञ न हो ?"

मांझी हँसा, "तू शास्त्र के ज्ञान की दृष्टी से गुरू धारण करने आया है या गुरू को गुरू की दृष्टि से ? ऐसी दशा में कोई गुरू का सेवक नहीं हो सकता, वह तो शास्त्र का भक्त है, गुरू भक्ती इस से न्यारी है, जो किसी को अन्य दृष्टी से गुरु धारण करता है वह उस अन्य पदारथ का भक्त है,गुरू का भक्त कदापि नहीं हो सकता।

(१) मान बड़ाई देखकर, भक्ति करे संसार।
जब कुछ देखे हीनता, अवगुन धरे गँवार॥
(२) गुरु भक्ती अति कठिन है,ज्यों खाँडे की धार।
डगमगाय तो गिर पड़े, निश्चल उतरे पार॥
(३) कबीर गुरु की भक्ति का,मन में बहुत उचास।
मन मनसा माँजे नहीं, होन चहत है दास॥

नारद उस माझी के पाँव पर गिरे, फिर क्षमा माँगी, माझी हँसा, नारद से कहा, "बैठ जा, अन्तर में ध्यान कर" और जब नारद ने आँख बन्द की अन्तर के पट खुल गये, प्रकाश और ज्योति का चमत्कार देखा, ज्योति स्वरूप गुरू का दर्शन मिला, अन्तरी शब्द की गुंजार सुनी। "नारद ! अब तेरे निगुरे होने का पाप जाता रहा, तू तो मुझे अनपढ़ माझी समझता था, मैं परम तत्व, मुख्य तत्व और सत्पुरुष हूँ। मेरी ही भक्ति सच्ची भक्ती

है। अब तेरे बैठने की जगह न लीपी जायगी और न वह अशुद्ध होगी, किन्तु जहाँ तू जायगा तेरे लिये पहले ही से चौका लग कर भूमि पवित्र की जयेगी और तेरी आरती उतारी जायगी आज से तू गुरूमुख हुआ, मन मुख नहीं रहा।"

नारद की आँख खुली, माझी खड़ा हुआ था, चरनों में मत्था टेका।

बन्दों गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रवि कर निकर॥

इस प्रकार उपदेश दे कर वह माझी उलटे पाँव जहाँ से आया था चला गया और नारद गुरू का गुन गाते हुये अपने स्थान में गये और मनमता का दोष जाता रहा।

शब्द (१)

(१) गुरु की महिमा कौन गाये, उसका गाना है कठिन।
पहुँचने वाले कहाँ तुझ तक हैं, बानी और बचन॥
(२) बुद्धि निर्णय कर नहीं सकती, न चित चिन्तन के योग
सोचने और समझने की, शक्ति पाता है न मन॥
(३) ज्ञानी अपनी युक्ति भूले, ध्यानी भूले ध्यान कर।
योगी थक कर हार बैठे, कर चुके जब सब जतन॥
(४) तू नहीं काशी न मथुरा, द्वारिका में तू कहाँ।
ढ़ूँढने बनखंडी और तपसी, चले हैं सूना बन॥
(५) मेरे हृदय में बसा रहता, निस्सन्देह तू।
राधास्वामी भेद बतलाया, लगी तुझ से लगन॥

शब्द (२)

(१) जन्म नर का पाके सत् जीवन, का भागी बन के रह।
भोग ज्ञान आनन्द को और, तू न त्यागी बन के रह॥
(२) बैल गदहा कुत्ता बन्दर, बन ने की इच्छा को छोड़।
इच्छा माया फाँस है इससे बिरागी बन के रह॥ २॥

(३) भक्त बन हो ज्ञानी ध्यानी, और विवेकी पारखी ।
कौन कहता है तुझे जग, में अभागी बन के रह ॥ ३ ॥
(४) करके सत् सङ्गत गुरू की, रूप अपना जान ले ।
सच्चिदानन्दम् अखण्डम्. तू न साँगी बन के रह ॥ ४ ॥
(५) राधास्वामी की दया ले, जग में तू है सबसे श्रेष्ठ ।
शब्द का अभ्यास कर, और शब्द रागी बन के रह ॥ ५ ॥

छटवीं कथा

आर्य्य जाति

ईश्वर ने जगत् के मनुष्यों में आर्य्य जाति को सबसे श्रेष्ठ बनाया और उसको धर्म्म कर्म्म फैलाने और सभ्य रीति के व्यवहार और परमार्थ का काम सौंपा । वेद भी उसे दिये और ऋषि मुनि, देवता आदि आर्य्यों में उत्पन्न किये । उनके रहने के लिये आर्य्यावर्त्त की सुवर्ण भूमि भी प्रदान की जो हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य में है और जहाँ गङ्गा यमुना सरस्वती पवित्र नदियाँ बहती हैं । अयोध्या नगर को उसकी राजधानी बनाई । आर्य्य जाति के लोग पहिले बहुत अच्छे थे । संसार में इनसे श्रेष्ठ कोई नहीं था कुछ दिनों यह सत् जीवन जीते थे फिर बिगड़ गये ।

ईश्वर को यह अच्छा नहीं लगा । तब उनके धमकाने डराने की इच्छा से उसने दस्यु जाति को बनाया । आशा थी कि दस्यु के भय से यह अपनी दशा को सुधार रक्खेंगे । कुछ दिन यह दाँव चला परन्तु काल के परिवर्त्तन से यह फिर बिगड़े साम (धमकाने की नीति) काम नहीं आई ।

तब ईश्वर ने सोचकर आर्य्य जाति के चार विभाग इस अभिप्राय को लेकर किये कि यह विद्या, बल, वणिज और कला कौशल द्वारा चार प्रकार के धन प्राप्त करके सुखी रहेंगे और यह

चार वर्ण ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्र कहलाये। कुछ दिनों तो यह सँभल कर रहे। फिर आपस ही में बैर भाव रखकर एक दूसरे से घृणा करने लगे और बिगड़ खड़े हुये। दाम नीति भी निष्फल हुई।

तब ईश्वर ने जान बूझकर इन को दण्ड देना चाहा और मुसलमानों को आर्यावर्त्त में भेजा। इन्हें बड़े बड़े दण्ड दिये गये। मन्दिर मण्डप ढाये गये और यह महा दुखी हो गये। आशा थी कि इस दण्ड से यह सुधरेंगे पर न सुधरे। दण्ड नीति से भी कोई लाभ न हुआ।

तब ईश्वर ने अँग्रेज़ों को इस देश में राज्य करने की दृष्टि से भेजा और उन को प्रेरणा की कि आर्य्यों में भेद फैला दो। जब सब पृथक् पृथक् अपने आप को देखेंगे तो एक दूसरे को देखकर अपनी अवस्था का संशोधन कर सकेंगे परन्तु भेद नीति भी काम नहीं आई। राज पाट धन प्रतिष्ठा खोने पर भी वह आपस में कुत्तों के समान लड़ते ही रहे। ईश्वर को इनकी यह बुरी दशा देख कर दुःख हुआ "कैसे शोक की बात है कि यह श्रेष्ठ जाति दिन प्रति दिन बिगड़ती ही चली जाती है और सँभलने में नहीं आती।"

तब ईश्वर ने अँग्रेज़ों से कहा "यह मूर्ख अज्ञान वश न सुधरेंगे। तुम इन पर राज करो। इनको जैसे हो भेदभाव की प्रणाली में डाल कर शिक्षा देते चलो। मैं और उपाय सोच रहा हूं। न यह साम से मानेंगे न दाम से न दण्ड से मानेंगे न भेद से। यह राज काज धन सम्पत्ति बल पराक्रम और कला कौशल के अधिकारी नहीं बनते। अब ऐसे लोगों को इनके सुधार का काम दूँगा जो राज आदि का आदर्श नहीं रखते। केवल प्रेम के प्रचार से इनको सुधारेंगे।" यह कह कर ईश्वर अन्तर्ध्यान हो गया।

और सत् पुरुष राधास्वामी दयाल ने दया और करुणा का परम संत अवतार धारण करके आर्यों के कुल में अपने आप को प्रगट किया और सुरत शब्द मत और शब्द योग का साधन सिखाना आरम्भ किया।

आशा है इस शिक्षा को पाकर सुधर जायेंगे और राज पाट धन द्रव्य के न रखते हुये भी फिर मनुष्यों में श्रेष्ठ पदवी प्राप्त कर लेंगे।

शब्द

१—राधास्वामी आये जग में, संत का अवतार धार।
शब्द मत सिखला के जीवों, का किया सच्चा सुधार॥ १॥
२—दुर्मती को त्याग दो, द्वेष ईर्षा अच्छी नहीं।
मन में हो परतीत प्रीत और, प्रेम भक्त से प्यार॥ २॥
३—साम दाम और भेद से और, दण्ड से निकला न काम।
प्रेम के मारग में आओ, प्रेम का करके बिचार॥ ३॥
४—प्रेम में शक्ती है रहती, और निबलता द्वेष में।
प्रेम का बल लेके अब हो जाओ, भव सागर से पार॥ ४॥
५—राधास्वामी योग सीखो, राधास्वामी योग पढ़ा
योग का संयोग हो, इसका करो निश दिन प्रचार॥ ५॥

सातवीं कथा

देवासुर संग्राम और उद्गीत

ईश्वर ने सृष्टि रचते समय दो प्रकार के जीव उत्पन्न किये। एक देवता थे और दूसरे दैत्य। इनको सुर और असुर भी कहते हैं। एक का स्वभाव दूसरे से भिन्न है और दोनों आपस में नित्य ही हर जगह और हर वस्तु में हाथा पाई करते रहते हैं। देवता तो

शुभ आचरणों वाले सतोगुणी होते हैं और दैत्य अशुभ आचरणवाले तमोगुणी होते हैं। इनकी लड़ाई देवासुर संग्राम कहलाती है। यह हमारे तुम्हारे शरीर में भी हैं और पत्ते पत्ते, बुन्द बुन्द और रेत के छोटे छोटे परमाणु में भी हैं। कोई जगह ऐसी नहीं है जहाँ यह रह कर मुठ भेड़ न करते हों। कुत्ते बिल्ली जैसी इनकी दशा है। यह लड़े। लड़ते रहे। कभी देवता जीते और असुर हारे। कभी असुर जीते और देवता हारे। देवता घबरा गये। असुर फिर भी बड़े बलवान थे।

तब देवताओं की समझ में यह बात आई कि यदि उद्गीत (उधर का राग, अन्तर का राग, प्रणव, ॐ अथवा अनहद धुन) गाया जाये तो असुर सदैव के लिये हार जायेंगे।

तब वह आँख से बोले "तू हमारे लिये उद्गीत गा कि देवताओं को विजय मिले।" आंख ने उद्गीत गाया। अपने लिये अच्छा अच्छा और दूसरों के लिये बुरा गाया। असुर पहुंचे। आँख को पाप से छू दिया। वह निबल हो गई। तब देवता हारे और असुर जीते और वह भाग निकले।

तब इन्होंने कान से उद्गीत गाने की प्रार्थना की। कान ने अच्छा अच्छा अपने लिये और बुरा बुरा दूसरों के लिये गाया। असुरों ने पाप से उसे छू दिया और देवता भाग निकले।

फिर देवताओं ने जिह्वा से उद्गीत गवाया उसने भी अच्छा२ अपने लिये और बुरा बुरा औरों के लिये गाया। असुरों के पाप से छुये जाने पर इसका भी वही परिणाम हुआ। देवता हारे और असुर जीते।

तब मन, नाक, हाथ सबसे बारी बारी पर उद्गीत गवाया। इन सब ने भी अच्छा अच्छा अपने लिये और बुरा बुरा औरों के लिए गाया। असुर पहुंचे। सबको एक दूसरे के पीछे पाप से छू दिया और यह नष्ट भ्रष्ट हो गये। देवताओं की हार ही होती रही।

अन्त में यह प्राण के पास गये और कहा "तुम उद्‌गीत गाओ।" प्राण में बुराई भलाई, अपना पराया और राग द्वेष का भाव नहीं होता। (क्या तुम नहीं देखते कि प्राण सब के सोते समय चलते रहते हैं। चाहे चोर चोरी करे या साधू भलाई करे, यह किसी की ओर ध्यान नहीं देते) असुर पहुँचे। पाप से छूना चाहा और छूते ही ऐसे भ्रष्ट हुये कि फिर उनका ठिकाना न रहा और देवताओं की जीत हुई। असुर हार कर भाग निकले।

प्राण से जो उद्‌गीत गाते हैं उनको सच्ची विजय प्राप्त होती है और शत्रु ऐसे नष्ट हो जाते हैं कि जैसे मिट्टी का ढेला किसी चट्टान से टक्कर खाकर पिस जाता है और फिर उसमें टकराने की शक्ति नहीं रहती।

यदि मनुष्य प्राण के इस भाव को लेकर अनहद वाणी का साधन करे तो जगत् के संग्राम में उसे भी ऐसी ही विजय मिले। (यदि यह बात समझ में न आये तो राधास्वामी धाम के सतसङ्ग में आकर पूछ देखो और काम करो।)

शब्द

१. राग अनहद का सुनो, अन्तर में अपने आन कर।
चित् की वृति रोक लो, सुमिरन भजन और ध्यान कर ॥१॥
२. आँख कान और मुख को मूँदो, यह सुगम साधन करो।
चढ़ चलो घट के गगन में, पुतलियों को तान कर ॥२॥
३. गुरु से गुरु गम लेके, सत् सङ्गत में सीखो यह यतन।
काम में लग जाओ फिर, उपदेश को सत् जानकर ॥३॥
४. बाहरी बातों को छोड़ो, अन्तरी साधन करो।
शब्द का लो आसरा, तुम उसकी महिमा जानकर ॥४॥
५. राधास्वामी ने कहा गुरु करना गुरु को जान कर।
पानी पीना पीछे पहिले, पानी लेना छान कर ॥५॥

आठवीं कथा

पिण्ड देश और हड़ताल

ईश्वर ने जब पिण्ड (मनुष्य के शरीर) को रचा तो हाथ पाँव, कान, नांक, दाँत, जिह्वा, मन, आँख, पेट सब को एक एक काम सौंप कर कहा "तुम सब मिले जुले रहकर अपना काम करो और तुमको सुख और शान्ति प्राप्त रहेगी।"

ईश्वर तो सबको समझा बुझाकर चला गया।

कुछ दिनों तक यह सब अच्छे रहे। फिर इनमें अनबन हुई। सबके सब पेट के पीछे पड़ गये और लगे उसे कोसने! तब इन्होंने मिल जुल कर पंचायत की।

पाँव बोला "इसी पेट के लिये मुझे बहुत जगह दौड़ना धूपना पड़ता है और मैं थक जाता हूँ। "झगड़े बखेड़े मचते हैं सब पेट के लिये।"

हाथ ने कहा "इसी पेट के निमित्त मुझे काम काज करने पड़ते हैं और मेरा बल जाता रहता है। "कारण है पेट दुख का विपति का यहाँ सदा।"

जिह्वा बोली, "तुम तो एक एक काम करते हो। मुझे दुहरा काम करना पड़ता है। इसीके लिये मैं बातें बनाती हूँ। खाने पीने को चुबला कर इसे भरती हूँ। मैं अब इससे तङ्ग आ गई 'इस पेट ने किया है मुझे देख लो दुखी।'

दाँतों ने कहा "तुम तो फिर भी अच्छे हो। मैं इस पेट ही के लिये चक्की पीस पीस कर इसका पालन पोषण करता रहता हूं। दाढ़ में पीड़ा हो जाती है। "इस पेट के बखेड़े से उकता गया हूं मैं।"

आँख ने कहा "इस पेट के लिये मुझे बुरा भला देखना पड़ता है यह न होता तो क्यों मैं ऐसे काम करती! इस पेट ही ने मुझ को किया नष्ट और भ्रष्ट।"

कान बोला "यह पेट बुरा है। इसके लिये मुझे बुरा भला उलटा सीधा, सब कुछ सुनाना पड़ता है। इसके साथ मैं रहना नहीं चाहता। 'अच्छा बुरा तो मैं सुनूँ और यह सुखी रहे।'

मन ने कहा "मुझे भी तो इसी निर्दयी के लिये बुरा भला सोचने और बन्दर के सामन सौ सौ प्रकार के नाच नाचने पड़ते हैं। यह कैसा कृतघ्न है! सब की कमाई हड़प जाता है। कभी डकार लेता है और कभी नहीं भी लेता। अब मैं भूल कर भी इसका साथ न दूँगा।

दुख बिपद की जाल में, मुझको फँसाया पेट ने।
रात दिन चिन्ता ग्रसित, मुझको बनाया पेट ने॥"

सब इन्द्रियाँ एक एक करके पेट का रोना रोईं। अन्त में सब ने यह सम्मति दी कि "हड़ताल कर दो। पेट के लिये कोई भी काम न किया जाये।" सब ऐसा ही करने के लिये उद्यत हो गये।

पेट ने सबकी सुनी। कुछ नहीं बोला। इन सबको मूर्ख और अज्ञानी समझकर चुपका हो रहा। यह सब आलसी बनकर बैठ रहे।

एक दिन दो दिन बीते। अब तो सब की अवस्था बुरी होने लगी। सब एक एक करके निबल और रोगी बन गये। जब यह दशा होगई सब ने फिर पंचायत की। चौकन्ने होकर उठ बैठे और सभा की परन्तु सब की अवस्था शोचनीय थी। बोलना चाहा। पर बात न निकली। जिव्हा लड़खड़ाई। कान फटफटा न सका। न हाथ हिला न पाँव। आँख पथरागई। नाक सिकुड़ गई। मन बेवश होगया। दाँत खट खटाने लगे। यह क्या हो गया! हड़ताल करने को तो कर दी परन्तु उस का परिणाम दुख ही हुआ।

तब अन्त में पेट ने आप ही उन सब को कहा "मूर्खो! तुम निपट अज्ञानी हो। तुम ने समझा मेरे लिए काम करते हो और मैं सब के कर्म्म और श्रमका फल अकेला खाजाता हूं। यह तुम्हारी

भूल है। सोचो ! मैं तो केवल तुम्हारे लिये भण्डारी का धर्म्म पालता हूं। जो कुछ तुम लाते हो तुम्हारे ही लिए मैं अपने भण्डार में रख लेता हूं और तुम सब से अधिक मुझे तुम्हारे ही लिए काम करना पड़ता है। आहार को अपने भीतर रखकर मैं उसे पकाता रहता हूं। लेई बनाकर रस, लुहू मज्जा धातु, वीर्य्य और ओजस् बना बना कर तुम को बाँट दिया करता हूं। तब तुम में शक्ति और बल आता है। एड़ी से लेकर चोटी तक सब को सब कुछ दे दिला कर बलवान बना रखता हूँ। तब ही तो तुम काम करने के योग्य होते हो। तुमने यह नहीं समझा। मुझे कोसने लगे और उलटा बुरा भला सुनाने लगे। मैं अकेला तुम सब का काम करता हूं। देखो! मैं कृतघ्न हूं या तुम सब कृतघ्न हो ! जो होना था हो चुका। अब उठो काम में लगो। ऐसी भूल फिर कभी न करना ! नहीं तो पछताना पड़ेगा।"

सब लज्जित हुये। पेट से क्षमा माँगी। काम में उद्यत हुये और जब पेट ने अपनी बारी पर सब को आहार दिया तब फिर वह बल पौरुष और पराक्रम वाले बने।

ईश्वर दूर खड़ा हुआ उन की लीला देख देख कर मुसकराता रहा और बोला "यह हड़ताली कैसे मूर्ख थे ! हड़ताल से अपनी ही हानि कर बैठे और अन्त में इन ही को पछताना पड़ा।"

बिना समझे बूझे हड़ताल का यही परिणाम होता है।

शब्द

१. सब रहो मिल जुल के मिलजुलकर, करो सब काम को।
देखना अनबन न होने पावे, तुम में नाम को ॥१॥

२. तज के आलस और निद्रा, त्याग दो परमाद को।
काम में लाओ सदा तुम, दिनके आठों याम को ॥२॥
३. एक छिन बेकाम रहना भी, कभी अच्छा नहीं।
काम से पाते हैं निर्धन, अर्थ मुक्ती धाम को ॥३॥
४. राधास्वामी योग साधो, राधास्वामी योग पढ़।
जीते जी सुख अन्त में लो, सत् का पद सत्धाम को ॥४॥

नवीं कथा

प्राण की मुख्यता

ईश्वर ने जब पिण्ड (मनुष्य के शरीर) को बनाया तो उसमें नाना भाँति की प्रकृतियाँ और इन्द्रियाँ भर दीं और उन्हें अपना अपना काम समझा कर चला गया।

जब यह शरीर हृष्टपुष्ट और बलवान हुआ तब एक दिन इन सब इन्द्रियों में अभिमान उत्पन्न हुआ। यह सब कहने लगीं कि "यदि मैं न रहूँ तो शरीर जीवित कभी न रहे। मुझे इस देह में प्रधानता की पदवी दो।" आँख, कान, नाक, हाथ, पांव, जिह्वा आदि सब डींग मारने लगे प्राण इनकी डींग में सम्मिलित नहीं हुआ। वह चुप रहा।

अन्त में सब ने मिल जुल कर पंचायत की। फिर यह निश्चय हुआ कि जिस के चले जाने से शरीर बेकाम हो जाये वही सब में श्रेष्ठ है।

सब से पहिले पाँव गया और ६ महिने पीछे आया शरीर को जीवित पाकर पूछा "तू बिना मेरे कैसे रहा ?" उसने उत्तर दिया "जैसे लँगड़े रहते हैं।"

फिर हाथ गया और ६ महीने पीछे आया। शरीर को जीता जागता पाकर पूछा "तुम सब लोग बिना मेरे कैसे रहे ?" उन्होंने कहा "जैसे लूले रहते हैं।"

तब आँख गई और ६ महीने पीछे लौट कर आई। पूछा 'मेरे बिना तुम सब कैसे रहे ?' वह बोले 'जैसे अन्धे रहते हैं।'

फिर कान गया और आया। पूछने पर सबने कहा 'तेरे बिना हम सब बहिरे के समान रहे।'

तब जिव्हा (वाणी) गई। लौटने पर शरीर को जीता पाकर चकित होकर पूछने लगी "मेरे न रहने पर तुम सब कैसे रहे ?" यह बोले 'जैसे गूँगे रहते हैं।

फिर नाक गई और लौट आई। देह काम कर रहा था। पूछा "मेरे बिना कैसे जी सके ?" सब ने कहा "नकटों और घ्राण शक्ति हीन मनुष्यों के सदृश।"

तब मन गया और फिर आया। पूछा "मेरे बिना कैसे रहे ?" उत्तर मिला "उन्मत्त और अमन मनुष्यों जैसे।"

इसी प्रकार सब गये और लौटे। इनके बिना शरीर जीवित रहा।

अन्त में प्राण जो अब तक चुप बैठा था बोला "लो ! अब मैं जाता हूं। शरीर को सँभालो।" अभी उसने अपना पग भी बाहिर नहीं रक्खा था कि सारा शरीर अकड़ने और ऐंठने लगा। आँख, कान, हाथ, पांव, मन, वाणी सबके सब बेजान होने लगे और उससे बोले "तूही सब का राजा है। बिना तेरे कोई नहीं रह सकता। तू न जा शरीर में बना रह और हम सब तुझ को अपनी अपनी सेवा की भेंट देते रहेंगे। तेरे बिना जीना असम्भव है।" तब प्राण ठहर गया और उसके ठहरने से सब की जान में जान आई। इससे सिद्ध हो गया कि शरीर में प्राण ही की मुख्यता है और यही सब में श्रेष्ठ है यह रहे तो और सब भी रहें। यह निकल जाये तो सब के सब मर जायें। उनका घमण्ड टूट गया और सब प्राण की सेवा करने लगे।

शब्द

१. प्राण की है मुख्यता, और प्राण सब का सार है।
प्राण में बल शक्ति है, दोनों का यह भण्डार है ॥ १ ॥
२. प्राण को समझो समझ कर , शब्द साधो प्राण संग।
साधना से सहज में, भव जल से बेड़ा पार है ॥ २ ॥
३. प्राण का भी शब्द ही है, सार शब्द को लो परख।
यह परख आयेगी सत्संग, के वचन की धार से ॥ ३ ॥
४. प्राण के समझे बिना, मत शब्द का अभ्यास कर।
फिर न छूटेगा कभी तू, जग के कारागार से ॥ ४ ॥
५. राधा स्वामी गुरु का सत्संग, पहिले कर फिर ले दया।
इस के पीछे शब्द साधन, मुक्ति दे संसार से ॥ ५ ॥

दसवीं कथा

ईश्वर के अनेक रूप

ईश्वर ने मनुष्य को बनाकर उसे बुद्धि, ज्ञान और विवेक दिया। हर बात की समझ बूझ प्रदान की। उसे नाम और रूप की समझ आई। उसने सब कुछ जान लिया। नहीं जाना तो केवल ईश्वर को नहीं जाना। उसने उसे अपने चारों ओर चलते फिरते बैठते उठते देखा भी परन्तु पहिचाना नहीं। रात दिन ईश्वर ईश्वर करने लगा। बातचीत में ईश्वर! लेन देन में ईश्वर! सौगन्द खाते समय ईश्वर! यह सब कुछ था पर उसे खुली आँखों से ईश्वर का दर्शन नहीं मिला। तीर्थ गया, मूर्ति पूजी, मन्दिरों की परिक्रमा की, वेद पढ़े, योग का साधन किया, जप तप सब कुछ किया, आयु भी बहुत बीत गई, पर ईश्वर नहीं मिला। बात पड़े वह कह भी देता था कि सब कुछ मैंने किया और करता रहता हूं ईश्वर

मुझे नहीं मिलता। समझ में नहीं आता अब क्या उपाय करूँ कि वह मुझे मिले !"

ईश्वर उसकी बातों को सुन सुन कर हँसता और कहता कि "यह मूर्ख मुझे देखता है और पहिचानता नहीं। समझ भी रखता है और जानता नहीं) मैं इसे कैसे बताऊँ कि मैं कौन हूँ और कहां रहता हूं? इसके मन में भ्रम बसता है। यह बताने पर भी मुझे न जानेगा। अच्छा! आज प्रातःकाल से सन्ध्या समय तक इसे दर्शन देता रहूँगा देखूँ अब भी यह मुझे देखता है कि नहीं। यदि इसने इस पर भी न समझा तो मूर्ख और अज्ञानी तो यह अवश्य है परन्तु प्रेमी है। उसके प्रेम का आदर सत्कार करके मैं इससे मिलूँगा और अपना दर्शन देकर नर स्वरूप में बात चीत करूँगा तब तो यह अवश्य ही मुझे मान जायेगा, जान जायेगा और पहिचान जायेगा।"

यह मन में सोच कर वह चुप हो रहा।

उस दिन सूर्य निकलने से सूर्य डूबने तक मनुष्य की दृष्टि में कई आश्चर्य जनक घटनायें आईं। मनुष्य ने सबको अपनी आँखों से देखा और चकित हुआ, परन्तु उसे उस में ईश्वर का दर्शन नहीं हुआ।

रात हुई जाड़े का दिन था। सब लोग आग सेकने के लिये बैठे थे। वह मनुष्य भी उनके बीच में था। सब लोग बैठे हुए दिन की बातों की चर्चा करने लगे। संयोग की बात एक और पुरुष भी वहाँ उनके साथ आकर बैठ गया।

मनुष्य कहने लगा "आज की बातें तो ऐसी विचित्र हुई हैं कि जो समझ में नहीं आतीं। कोई क्या समझे! और क्या न समझे!"

यह नया पुरुष पूछ बैठा "मुझे भी सुनाओ मैं भी तो सुनूँ।"

उस मनुष्य ने कहा "कोठे पर से एक लड़का गिर पड़ा। ज्योंहीं वह छत से गिरा। नीचे दो तीन गायें अकस्मात् आ

थी। वह उनकी पीठ पर गिरा थोड़ी सी चोट आई। जो कहीं गायें न आगई होतीं तो वह अवश्य मर गया होता। गिरने की जगह पथरीली। हड्डी पसली थी सब चूर हो गई होती। क्या यह विचित्र और अनोखी बात नहीं थी।

पुरुष बोला "वह गायें नहीं थीं। गायों के रूप में ईश्वर आप उस नन्हें बालक को बचाने आया था।"

मनुष्य ने कहा "दूसरी बात यह हुई कि गांव के एक घर में आग लगी। कोठे पर एक सुकुमारी लड़की सो गई थी। और सब प्राणी तो किसी न किसी विधि से निकल आये थे परन्तु सोई हुई लड़की न निकल सकी। जब आग प्रचण्ड हुई उसकी आंखें खुलीं। पर वह न तो सीढ़ियों से नीचे उतर सकती थी न ऊपर से कूद सकती थी। उसके जल मरने में कोई संदेह नहीं था। उसी समय एक परदेसी आया। परदेसी क्या था! दया का रूप था! दया ही देह धारण कर आगई थी। उसने झटपट खिड़की से बाँस की सीढ़ी लगाई। अपनी जान पर खेल कर ऊपर चढ़ा। लड़की को अपनी कमर से बाँधा और सब के देखते देखते उतार लाया। वह कई जगह आप जल भी गया था परन्तु लड़की को बाल बाल बचा लाया। उस पर आँच तक न आने पाई और फिर वह अपनी राह चला गया।"

पुरुष बोल उठा 'वह परदेसी नहीं था। साक्षात् ईश्वर था। और क्या बात हुई ?"

मनुष्य ने कहा "तीसरी बात यह हुई कि एक साँप ने एक बूढ़ी स्त्री की राह रोक ली थी। और वह अवश्य काट खाता। एक बिल्ली झपटी। अपना पंजा उसके फण पर मारा। साँप ने बुढ़िया को तो छोड़ दिया। वह भाग गई बिल्ली से भिड़ गया और उसे फण से घायल करना चाहा। जब वह फण उठाता बिल्ली उछल कर पंजे से उस पर वार करती, थोड़ी देर तक

लड़ाई रही। सांप उलटे घायल होकर दबक रहा। तब जाकर बिल्ली ने उसे छोड़ा।"

पुरुष हँसा "वह बिल्ली नहीं थी, ईश्वर था जो दीन दुखियों का समय समय पर सहायक हुआ करता है। और क्या हुआ ?"

मनुष्य ने कहा "इसी प्रकार की एक और बात यह हुई कि भूख प्यास का मारा हुआ एक अहीर का बालक धूप में पड़ा हुआ था और उसके सर पर एक बड़ा कौड़ियाला नाग फण फैलाये हुये छाया कर रहा था।"

पुरुष बोला "भाई ! वह भी ईश्वर ही था। तू बड़ा भाग्यवान है कि आज कई रूपों में ईश्वर का तूने दर्शन कर लिया।"

वह बोला "ईश्वर ! तू सब को ईश्वर ही बताता है। गाय, मनुष्य, बिल्ली, सांप सब ही तेरी दृष्टि में ईश्वर हैं।"

इसने कहा "ईश्वर नहीं तो और क्या ! उसके एक दो रूप थोड़े ही हैं। उसके अनगिनत नाम और अनगिनत रूप हैं। वह ऐसे ही अपने प्रेमियों को नाना भांति से दर्शन देने आया करता है।"

मनुष्य सोचने लगा और यह पुरुष आग सेकने के पीछे वहां से उठकर चल खड़ा हुआ।

यह पुरुष आप ईश्वर था। जो ईश्वर का भेद बताये वही तो ईश्वर होता है। दूसरा उसका भेद कैसे जान सकता है ! उस तक तो मन और वाणी की भी पहुंच नहीं है।

ईश्वर को सोच हुआ "मैं अपने इस मूर्ख प्रेमी को सब प्रकार से समझा चुका परन्तु इसने इस पर भी मुझे नहीं पहिचाना। अब क्या करूं कि वह जाने।"

तब ईश्वर ने मनुष्य के रूप में गुरू का भेष बनाया। उसके गांव में गया संशयात्मक मनुष्य पहिले तो उसकी ओर नहीं झुका। जब कुछ दिनों तक सत्सङ्ग किया तो उसे गुरू धारण

किया। तब उसने गुरू के रूप में ईश्वर का दर्शन किया और कृत-कृत्य होगया परम सन्त कबीर साहिब ने सच कहा है:—

दोहा

१—"जा खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा।
कहैं कबीर सुन साधवा! कर सतगुरु सेवा ॥ १ ॥
२—गुरू बतावें साध को, साध कहैं गुरु पूज।
सैन बैन के बीच में, भई अगम की सूझ ॥ २ ॥
३—यह तन विष की बेलरी, गुरू अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलें, तब भी सस्ता जान ॥ ३ ॥
४—कोटिन चन्दा ऊगवें, सूरज कोटि हज़ार।
सतगुरु मिलिया बाहिरा, दीखे घोर अंधार ॥ ४ ॥
५—गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दिया लखाय ॥ ५ ॥

शब्द

१-गुरु के मत में आके गुरुगम, पन्थ को पहिचान ले।
गुरु की सङ्गत करके गुरु का, मर्म ले और ज्ञान ले ॥ १ ॥
२-गुरु हैं ब्रह्मा गुरु हैं विष्णू, गुरु हैं शिव की मूरती।
ब्रह्म हैं परब्रह्म गुरु हैं, गुरु से गुरु को जान ले ॥ २ ॥
३-गुरु मिले सब कुछ मिला, अब किसकी मन में चाह हो!
अर्थ धर्म और मोक्ष की, और कामना की खान ले ॥ ३ ॥
४-ज्ञान भक्ति दोनों गुरु के, आसरे हैं यह समझ।
गुरु दया से दोनों पा ले, जीते जी निर्वाण ले ॥ ४ ॥
५—राधास्वामी सन्त सतगुरु, रूप में प्रगटे यहां।
ले शरण अब पद कमल में, झुक के मेरी मान ले ॥ ५ ॥

ग्यारहवीं कथा

अवधूत और अहङ्कारी राजा

ईश्वर एक दिन मरघट पर पहुँचा और मनुष्यों की खोपड़ियां इकट्ठा करके उनको देखने लगा। उसने ऐसा क्यों किया? इसका पता आगे चल कर इसी कहानी में मिलेगा। ईश्वर कभी कभी अनेक रूप से उपदेश दिया करता है एक बात हो तो कोई कहे। उसकी लीलायें सब की सब विचित्र हुआ करती हैं।

उस देश का राजा बड़ा घमण्डी था। साधुओं को देखकर घृणा किया करता, उसे अपने कुल और राजाओं के वंश में उत्पन्न होने का इतना अहङ्कार बढ़ गया था कि वह सब को नीच कुल और अप्रतिष्ठित मनुष्यों की सन्तान कहा करता था।

राजा हिरन के पीछे घोड़ा दौड़ाता हुआ मरघट की ओर जा निकला। ईश्वर अवधूत के रूप में खोपड़ियों को सामने रक्खे हुए उनकी निरख परख कर रहा था। राजा ने उसे देखा। अप्रिय और घृणित शब्दों में पूछा "ओ बावले औघड़! क्या कर रहा है?"

अवधूत ने उत्तर दिया "मैं यह जानना चाहता हूँ कि इन खोपड़ियों में से कौन धनवान की है और कौन कङ्गाल की है!" यह एक बात हुई। दूसरी बात यह है कि मैं पहिचानना चाहता हूँ कि इन में से कौन बड़े कुल का और कौन छोटे कुल का था! तीसरे यह कि इनमें से कौन राजा था और कौन भिखारी साधू था! चौथे मैं अनुमान करना चाहता हूं कि इन में से कौन तेरा बाप था, और कौन मेरा! मुझे तो अब तक समझ नहीं आई! यदि तू जानता हो तो बता दे।"

राजा लज्जित हो गया। औघड़ को तो उसने बावला और उन्मत्त समझ कर कुछ न कहा परन्तु उस दिन से जाति पांत

छुटाई बड़ाई, ऊँच नीच का घमण्ड उसके मन से जाता रहा जीते जी फिर उसने किसी को भूलकर भी कुछ नहीं कहा।

शब्द

१. ध्यान तक करता नहीं है, कोई मेरी बात का
क्या कहूँ ! है भेद उनमें, मुझ में दिन का रात का ॥ १ ॥
२. काल ने चोटी पकड़ रक्खी है, सब की हाथ में।
फिर भी यह करते हैं झगड़ा, पांत का और जात का ॥२॥
३. सब की उत्पति स्थिती, और लय की लीला एक है।
जिसको देखा न्यून जीवन, कीड़ा था बरसात का ॥३॥
४. आये हैं सो जायेंगे रहने नहीं आया कोई।
ज्ञान होता ही नहीं है, इनको यम की घात का ॥४॥
५. यह सहेंगे कष्ट आपत, सुनने वाला कौन है।
बात को कब मानता है, देवता जो लात का ॥५॥
६. पांव से हैं रौंदते रहते, दुखी और दीन को।
कोई कह सकता नहीं, अन्धेर इस उत्पात का ॥६॥
७. राधास्वामी ने कहा, सब प्रेम के रस्ते चलें।
ध्यान ये करते नहीं हैं, सतगुरु की बात का ॥८॥

बारहवीं कथा

पाँच प्रश्न

ईश्वर को संसार में बहुत बातें करनी पड़ती हैं जो हमारी तुम्हारी समझ से बाहर हैं और वह कैसी २ युक्ति से करता है उसका भी पता पाना कठिन है। किसी राजा के चार पांच प्रश्न थे, "ईश्वर कहां है ? ईश्वर क्या करता है ? ईश्वर क्या खाता है ? ईश्वर कहां समाता है ? और ईश्वर कहां कहां जाता है ?" वह

सबसे प्रश्न करता । कोई भी उत्तर न दे सकता और यह उन सब को दुखी करता रहा। बहुत से ज्ञानी ध्यानी तंग आगये। इस का ऊधम बन्द नहीं हुआ।

ईश्वर ने विचारा "यह राजा बड़ा अन्यायी हो गया है। इसको अन्याय का रोग लग गया है। इसकी औषधि होनी चाहिये।"

तब ईश्वर ने एक बालक का रूप धारण किया और उस की राज सभा में आया। पहिले राजा के कर्मचारियों ने रोका उसने कहा "मुझे न रोको। मैं राजा के प्रश्नों का उत्तर देने आया हूँ।"

तब लोग उसे सभा में लाये। राजा ने कहा "यह बच्चा आपका उत्तर देने आया है!" राजा ने चकित हो कर पूछा "क्या तू मेरे प्रश्नों का उत्तर देने आया है?" उसने कहा 'हाँ।'

राजा बोला "तब उत्तर दे। प्रश्न ये हैं—ईश्वर कहाँ रहता है? ईश्वर क्या करता है? ईश्वर क्या खाता है? ईश्वर कहाँ २ जाता है? और कहां समाता है?"

लड़का बोला "प्रश्न तो सीधे हैं। मैं उत्तर दूँ तो तू क्या देगा?"

राजा ने कहा "जो तू मांगेगा वही दूँगा।"

लड़का बोला "बहुत अच्छा! तो तू पहिले मेरे ही प्रश्नों का उत्तर दे दे। वह भी तेरे प्रश्नों ही जैसे सरल और सीधे हैं। तू पहिले यह बता दे ईश्वर कहां नहीं रहता? ईश्वर क्या नहीं कर सकता? ईश्वर क्या नहीं खा सकता? ईश्वर कहां नहीं जा सकता? और ईश्वर कहाँ और किस में नहीं समा सकता? तब मैं तेरे प्रश्नों का उत्तर दूं।"

राजा चुप हो गया। कोई बात मुँह से न निकली और लड़के का मुँह देखने लगा।

लड़के ने कहा "जब तू एक बच्चे का उत्तर नहीं दे सकता तो बच्चे से अपने प्रश्नों की तू ने कैसे आशा की? मैंने तेरे प्रश्न का प्रति प्रश्न से उत्तर भी दे दिया। अब तू समझ गया कि नहीं?

राजा मुस्कराया "समझ गया।"

वह बोला "तो अब यह प्रश्न फिर किसी से न करना नहीं तो तेरी हँसी होगी?"

राजा ने लड़के को बुद्धिमान पाकर रोकना चाहा। बोला "तू मेरे साथ रह। तुझे पढ़ा लिखा कर अपना दीवान बनाऊँगा और बहुत धन द्रव्य दूंगा।"

लड़का हँसा "मैं अपने खेल कूद में मग्न रहता हूँ। मुझे छुट्टी नहीं है। तेरे साथ तो ईश्वर आप रहता है तभी तो तू राजा बना है। तू बच्चे के आसरे तो नहीं राज करता।"

यह कह कर वह चलता बना। रोके नहीं रुका और राजा देखते का देखता रह गया।

शब्द

१—सब जगह रहता हूँ और सब में मेरा अस्थान है।
देख लेता है मुझे वह, जिस को मेरा ज्ञान है ॥१॥
२—आंख वाले देखते हैं, रूप मेरा सब जगह।
वह समझ लेते हैं जिनमें, समझ का अनुमान है ॥२॥
३—काम करता हूँ सभी, निष्काम मेरा काम सब।
मुझ में ज्ञान अनुमान है, और मुझ ही में परमाण है ॥३॥
४. मुझ में सृष्टी स्थिती, और लय के सब परबन्ध हैं।
नाम जो लेते हैं मेरा, उन को पद निर्वाण है ॥४॥
५. राधास्वामी नाम लेकर, राधास्वामी धाम लो।
लोक यश परलोक और, आनन्द का जो ध्यान है ॥५॥

तेरहवीं कथा

राजा और जाट

ईश्वर के काम एक ही ढङ्ग के सदा सर्वदा नहीं होते। कभी वह कुछ करता है और कभी कुछ करता है। बातें भी एक प्रकार नहीं होतीं। दूसरी कहानी सुनो।

कोई राजा था। वह पाँच प्रश्न किया करता था—"ईश्वर क्या करता है ? ईश्वर का काम कैसा होता है, ईश्वर क्या खाता है ईश्वर कहाँ रहता है ? और ईश्वर कहाँ नहीं रहता ?' जो कोई आता उससे वह यही प्रश्न किया करता और जो उत्तर न देता उससे रुष्ट और क्रुद्ध हो जाया करता। दीवान से लेकर सारे कर्मचारी और पण्डितों से लेकर सारे पुजारी दुखी हो गये। ईश्वर को भी बुरा लगा और उसने भी राजा का घमंड तोड़ना उचित समझा।

एक दिन दीवान ने अपने लड़के से कहा "किसी न किसी दिन राजा मेरे सर होगा। कहो तो इसका राज्य छोड़ दूँ। न किसी से उसके प्रश्न का उत्तर दिया जाता और न छुटकारा मिलता है।" लड़का बोला "चिंता न करो। मैं यात्रा को निकलता हूँ। किसी न किसी ज्ञानी ध्यानी को ढूँढ़ लाऊँगा।"

यह कह कर वह घर से बाहर निकला। कई कोस चला गया। दोपहर का समय था धूप कड़ी थी किसी वृक्ष के नीचे पड़कर सो रहा। पास ही कोई जाट खेत जोत रहा था। उसने इसे देखा। जब उस की लड़की खाने के लिये रोटी लाई उसने दीवान पुत्र को जगाकर कहा "रोटी खा ले" यह बोला "रोटी क्या खाऊँ ! राजा के पांच प्रश्न हैं। किसी को उनका उत्तर नहीं आता। बहुत दुखी हूँ।" वह बोला 'रोटी खा ले। मैं तेरे साथ चलकर उत्तर दे आऊँगा।'

यह बोला "तू जाट है। ज्ञान ध्यान की बात क्या जाने !

उसने कहा 'बावला हुआ है ! जाट की हाट में सब प्रकार का ठाट ! जाट की बाट में सब प्रकार का लूट पाट ! और जाट के टाट में सब प्रकार की चाट ! जाट परमेश्वर से छोटा नहीं होता। रोटी खाकर मुझे ले चल और देख मैं राजा से कैसे निबटता हूँ ?

दीवान पुत्र ने उस जाट के साथ बैठकर बाजरे की रोटी खाई मीठा पानी पिया। जब यह खा पी चुके जाट ने अपनी लड़की से कहा "तू हल बैल घर लेजा। मैं राजा के पास उसका उत्तर देने जाता हूं।

इतना कह कर वह उठ खड़ा हुआ। सीधा राजस्थान में चला आया। गँवार तो था ही ! बेधड़क सिंहासन के पास पहुँच कर उससे कहा "राजा रे राजा ! मैं तेरे प्रश्न का उत्तर देने आया हूं।

राजा ने कहा "अच्छा बता—ईश्वर क्या करता है ? उस का काम कैसा होता है ? ईश्वर क्या खाता है ? ईश्वर कहां रहता है ? और कहां ईश्वर नहीं रहता ?"

यह बोला "इसका प्रमाण नहीं तू जिज्ञासू बनकर प्रश्न करता है कि अनाड़ी बनकर ?"

राजा ने कहा "जिज्ञासू बनकर।"

तब जाट बोला "फिर मैं तेरा गुरू हुआ और तू मेरा चेला ठहरा। सिंहासन से नीचे उतर। मैं गुरू हूँ। इस पर बैठकर उत्तर दूँगा। तू गुरू को भेंट चढ़ाये बिना प्रश्न करता है। क्षण मात्र के लिए सिंहासन मुझे भेंट कर। तब बात चीत हो।"

राजा को प्रश्न करने की धत पड़ गई थी। मन में मुस-कराकर नीचे उतरा। जाट सिंहासन पर दनदना कर बैठ गया और बोला 'तेरे पांचों प्रश्नों का यही एक उत्तर है। समझा कि नहीं ?"

राजा ने कहा "नहीं समझा। अब तू मेरा गुरू बनता है। समझा दे।"

जाट बोला "ईश्वर का काम यही है। एक को सिंहासन से उतार और दूसरे को बिठाता है, उसका यह काम स्वार्थ वश नहीं किंतु निष्काम हुआ करता है। ईश्वर तुझ जैसे राजाओं का गर्व खाता है उसका नाम गर्वाहारी है ईश्वर मुझ जैसे विश्वासी के हृदय में रहता है तुझ जैसे अविश्वासी के हृदय में बास नहीं करता।

यह कहकर जाट चुप हो गया। राजा को उत्तर मिल गया। उसने जाट की चतुराई की प्रशंसा की।

जाट उसी समय सिंहासन से उतर आया और जाने लगा राजा ने रोकना चाहा। जाट बोला "सुन राजा! प्रश्न के उत्तर देने की बात ठहरी थी। रोकने की नहीं ठहरी थी। मुझे अपनी खेती का काम काज करना है।" यह कहा और उसी समय अपने गांव को चला आया। सब के सब दङ्ग रह गये।

यह जाट ईश्वर ही था।

शब्द

१. सबके घट घट का है बासी, घट ही उसका धाम है।
रूप भी सब हैं उसी के, उसके लाखों नाम हैं॥१॥
२. भक्त की भक्ती, तो शक्तीवान की, शक्ती है वह।
ज्ञान है ज्ञानी का और, सन्तों का वह विश्राम है॥२॥
३. एक है और सहस है, और सहस से भी है अधिक।
सबका है सब में है सब जग, का वह रमता राम है॥३॥
४. फूल फल पत्ते कली, पौधों में है वह बीज रूप।
देह में वह बल में वह है, उस में धन और धाम है॥४॥
५. राधास्वामी ने बताया, उसके होकर तुम रहो।
वह है उसका जो सुमिरता, उसको आठों याम है॥५॥

चौदहवीं कथा

जाति विभाग

ईश्वर ने जब जगत् को रचा तो आर्य वंश के चार भाग किये ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। यह विभाग गुण कर्म्म और स्वभाव के अनुसार थे। ईश्वर ने कहा "देखो आर्यो! जैसा तुम्हारा शरीर चार अङ्गों वाला है वैसे ही तुम जाति शरीर की दृष्टि से चार अङ्गों वाले हो और जैसे शरीर के चारों अङ्ग सर, हाथ पेट और पांव एक दूसरे के साथ गुथे हुये मिली जुली रीति से काम करते हैं वैसे तुम्हारी जाति रूपी शरीर की भी मिली जुली हुई दशा रहे। जब तक तुम में मेल मिलाप रहेगा तब तक किसी प्रकार की हानि तुम को न पहुँचेगी। जब तुम आसप में अनबन कर लोगे तो तुम्हारी भी वही अवस्था होगी जो अङ्गहीन शरीर की होती है।"

कुछ दिन आर्य्य जाति के मनुष्य सुख शान्ति के साथ रहे। फिर उनमें अनवन होने लगी।

ब्राह्मण बोला "मैं सब से बड़ा हूं। तुम मुझ से छोटे हो क्षत्री को बुरा लगा। उसने उसकी दुर्गति की। फिर क्षत्री ब्राह्मण की लड़ाई हुई और ऐसे लड़े जैसे बावला और उन्मत्त मनुष्य अपने दाँतों ही से अपने हाथों को काटता है अथवा हाथों से सर आँख कान नाक को नोच खसोट कर बेकाम बना देता है। सर बलवान था। हाथ घायल होकर चुप हो रहा। ब्राह्मण जीते क्षत्री हार गये परन्तु क्षत्री का काम ब्राह्मण से कैसे हो सकता है दोनों दुखी हुये। तब ब्राह्मणों ने क्षत्री को मनाया और राज काज उसे सौंपा।

कुछ दिनों तक व्यवहार अच्छा रहा। तब फिर ब्राह्मण का सर बिगड़ा। सारे रोग सर ही से उत्पन्न होते हैं। वह अपने

को सब में श्रेष्ठ और सब को अपने से नीचा मानने लगा। ऊधम मच गया। जाति पाँत, छूत छात और आचार विचार का पाखण्ड फैला। ब्राह्मण क्षत्री को और क्षत्री ब्राह्मण को बुरा भला कहने लगे। ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्र से घृणा करने लगे। वैश्य और शूद्र भी ब्राह्मण और क्षत्री से खटकाने लगे। जाति शरीर के चारों अङ्ग सर हाथ पेट और पाँव को रोग लग गया और वह लगे रोने झीकने और चिल्लाने !

ईश्वर को दया आई। प्रगट होकर बोला "मूर्खो ! बात क्या थी और तुम ने क्या समझा ! मैंने तो सृष्टि क्रम के अनुसार तुम को बनाकर गुण कर्म और स्वभाव के अनुकूल रहने की शिक्षा दी और तुम आपस में बड़े और छोटे बनकर एक दूसरे को नोचने और खसोटने लगे। कोई शरीर बिना चार अङ्गों के नहीं रह सकता। अब भी समझ बूझ कर रहो। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।" परन्तु अहङ्कारी ब्राह्मण ने ईश्वर की बात नहीं सुनी और ब्राह्मण के राह पर न आने के कारण आर्य जाति की मर्यादा भ्रष्ट होगई और वह फिर लगे लड़ने झगड़ने।

ब्राह्मण बोला "सर उत्तम है। तिलक उसी को लगता है।" क्षत्री बोला "तिलक हाथ लगाता है इसलिए क्षत्री बड़ा है वैश्य ने कहा "वैश्य जाति पेट के समान है। सब ब्राह्मण क्षत्री और शूद्र पेट की सेवा में लगे रहते हैं। तुम सब हमारी सेवा करो और हमारे आधीन रहो।" शूद्र जो अब तक चुप था बोल उठा पाँव ही की पूजा सब जगह होती है 'हाथ पाँव को धोता है। यह जाति सृष्टि का आधार मात्र है। इसकी पूजा करो।"

वह ऐसे लड़े कि लड़ लड़ कर थक गये। फिर भी न सँभले तब ईश्वर ने उन पर कोप किया, और मनुष्यों की अन्य जातियों को प्रेरणा की "यह मूर्ख कभी न मानेंगे। तुम जाकर इनको मारो पीटो और अङ्गहीन बनाओ तब सम्भव है यह सँभलें।"

फिर यह जातियाँ आईं और चारों को भ्रष्ट करने लगीं।

छूत छात जाति पाँत का पाखण्ड टूटने लगा। यहां तक दुर्गति है कि कश्मीर के ब्राह्मण, सिन्ध के वैश्य और क्षत्री और आसाम की ऊँची जाति वाले अब अन्य नीची जातियों के जूठे खाने से पलते हैं। धर्म कर्म सब गया। आचार विचार मटिया मेट हो गया, परन्तु वह अब भी नहीं सँभलते और न मिल जुल कर रहने का साधन और संठगन का यत्न सोचते हैं।

ईश्वर का कोप अब भी उन पर है क्योंकि इन मूर्ख अज्ञानियों को अकड़ अब तक नहीं गई। रस्सी जल गई परन्तु ऐंठन अब तक भी नहीं जाती। ईश्वर देख रहा है। यदि यह सँभले नहीं तो नष्ट भ्रष्ट होकर मिट्टी में मिल जायेंगे क्योंकि ऐसे मनुष्यों को सृष्टि में जीते रहने का कोई अधिकार नहीं है।

शब्द

१. बुद्धि जब तुमको मिली, मिल जुल के रहना सीख लो।
द्वेष तजकर प्रेम की युक्ती, का गहना सीख लो ॥१॥
२. भाइयों से बैर त्यागो, मित्रता का भाव लो।
मुख से मीठे और मधुर, बचनों का कहना सीख लो ॥२॥
३. लड़ते लड़ते हो गये हो, अब निबल सोचो सही।
यह दशा अच्छी नहीं, सुमती का लहना सीख लो ॥३॥
४. ऐसा हो व्यवहार जिससे, सुख मिले सुख से जियो।
कौन कहता है कि दुख धारा, में बहना सीख लो ॥४॥
५. राधास्वामी जग में आये, प्रेम का परिचय दिया।
मेल का साधन हो मिल जुल, कर निबहना सीख लो ॥४॥

पन्द्रहवीं कथा

वेदान्त और वेदान्ती

ईश्वर ने आर्यों को चार वेद दिये और ज्ञानी, ध्यानी योगी और अवधूत दशा में रहने के साधन सिखाये। कुछ दिनों

तो वह अच्छे प्रकार रहे फिर उनको भ्रम सताने लगा। बुद्धि आई और केवल कल्पित बुद्धि का गोरख धन्दा फैल गया।

इनमें एक जत्था ऐसा निकला जिसने अपनी समझ में वेद का अन्त कर दिया और अपने पन्थ का नाम वेदान्त और अपना नाम वेदान्ती रक्खा। यह अहङ्कार में ऐसे भूले कि वेद, ईश्वर और जगत् को मिथ्या कहने लगे और जगह जगह पहुँच कर अपनी शिक्षा फैलाने लगे। उसका परिणाम लड़ाई झगड़ा हुआ। अशान्ति फैली।

ईश्वर ने यह दशा देखी, उसे बुरा लगा क्योंकि यह वेदान्ती जहाँ सिंह के समान गरजते हुये पहुँचे कोई इनके सामने नहीं ठहरता। यह अपनी मिथ्या की युक्ति और प्रमाण से सब को परास्त कर देते थे और वह गीदड़ों के सदृश पूँछ दबाकर भाग निकले थे। मत मतांतरों, शास्त्रों और सम्प्रदायों की अवस्था शोचनीय होगई।

तब ईश्वर ने सन्यासी का भेष धारण किया और काशी में जिस जगह इनका औरों के साथ शास्त्रार्थ हो रहा था जा पहुंचा। इनकी बातें ध्यान से सुनीं और जब दूसरे मतावलम्बी चले गये और वेदान्ती वेदान्ती सब रह गये तब ईश्वर ने इन की ओर दृष्टि करके कहा "प्यारे भाइयो! तुम बड़े विद्वान हो। तुम्हारी युक्ति बड़ी प्रबल है। यदि तुम मुझे आज्ञा दो तो मैं तुम से प्रश्न करूँ।"

वेदान्ती बोले "पहिले यह बता दो कि तुम्हारा पक्ष क्या है? तब प्रश्न करो।"

ईश्वर ने कहा "मेरा कोई भी पक्ष नहीं है। मैं निर्पक्ष हूँ।"

वेदान्तियों ने कहा "पक्ष के बिना तो कोई नहीं होता। हम तुम को निर्पक्षता का पक्षपाती समझ कर और जिज्ञासू मान कर पूछने की आज्ञा देते हैं। तुम जो चाहो पूछ चलो।"

ईश्वर बोला "तुम ईश्वर जगत् औा वेद को मिथ्या कहते हो। क्या यह सब मिथ्या ही हैं ?"

वेदान्तियों ने उत्तर दिया ' मिथ्या नहीं तो और क्या हैं ?"

ईश्वर ने कहा "बहुत अच्छा ! यह मिथ्या ही सही परन्तु मिथ्या का मिथ्या कहने वाला क्या मिथ्या नहीं हुआ ?"

वेदान्ती बोला "मिथ्या है।"

ईश्वर हँसा "तब तुम भी मिथ्या ठहरे और तुम्हारी युक्ति प्रमाण बुद्धि सब ही मिथ्या हुई। और जब तुम मिथ्यावादी हुये तो फिर तुम्हारी मिथ्या की बातें सत्वादियों के सुनने योग्य है या नहीं ?"

वेदान्ती चुप हुये।

ईश्वर ने फिर कहा "जब वेद मिथ्या तो फिर वेदान्त और वेदान्ती क्यों न मिथ्या होंगे ? इसलिये तुम्हारा नाम रूप कथन भाषण सब का मिथ्या ठहरा।"

वेदान्ती सिट पिटाये "हम सिद्धान्ती हैं। यहाँ केवल सिद्धान्त की बातें करो। सिद्धान्त के बाहर न जाओ।'

ईश्वर ने कहा ' सिद्धान्त भी मिथ्या ! सिद्धान्ती भी मिथ्या ! सिद्धान्त के बाहर भीतर सब ही मिथ्या ठहराना तुम कहते क्या हो ? पहिले सोच कर तब मुँह खोलो।'

वेदान्ती चुप रह गये।

ईश्वर ने कहा 'यह तो हो गया। इस प्रश्न का कुछ उत्तर तुम्हारे पास नहीं है। अब यह बताओ तुम कुछ मानते भी हो या नहीं ?'

वेदान्ती बोले 'हम ब्रह्मवादी और सत्वादी हैं। हम आप ब्रह्म हैं।'

ईश्वर हँसा "सच है। तुम तो ब्रह्म हो। केवल ईश्वर मिथ्या है। वह ब्रह्म नहीं है। वेद मिथ्या है, वेद ब्रह्म नहीं है। जगत् मिथ्या है, जगत् ब्रह्म नहीं है।"

वेदान्ती बोले "सब ब्रह्म ही ब्रह्म है ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'

ईश्वर मुसकराया 'यह सब सच सही! फिर यदि मैं तुम्हारे इसी बचन अनुसार यह कहूँ कि वेद ब्रह्म, जगत् ब्रह्म ईश्वर ब्रह्म तो क्या यह भूल होगी?"

वेदान्ती प्रसन्न हुये "यही तो हम मनमता चाहते हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त वेदान्त की और क्या शिक्षा है?'

ईश्वर हँसा "बहुत अच्छा! तो फिर मिथ्या कहाँ रहा? प्रश्न तो मिथ्या का है। फिर तुम्हारी अपनी मिथ्या की यह युक्ति मिथ्या हो गई कि नहीं?

वेदान्ती चुप हो गये। फिर कोई बात उनके मुँह से नहीं निकली। ईश्वर ने समझा अब यह समझ गये और वहां से चुप के उठकर चल खड़ा हुआ। इन को पता भी नहीं लगा कि यह कौन था, कौन नहीं था!

शब्द

१. "नेती नेती" "एती एती', में पड़े अनजान सब।
इन की युक्ती सब है मिथ्या, और मिथ्या ज्ञान सब ॥१॥
२. बातों से यह सिद्ध करना, चाहते हैं रूप को।
जब न हो अनुभव तो निष्फल, इसका है अनुमान सब ॥२॥
३. मन नहीं जाता वहाँ, वाणी की गम उसमें नहीं।
बुद्धि से सुलझायेंगे क्या, गुत्थी बुद्धीवान सब ॥३॥
४. तत्व सब का एक है, इसमें नहीं संशय कोई।
बातों का फैला बतँगड़ा, भर्म है अज्ञान सब ॥४॥
५. काग विष्ठा जग को कहना, और गिरना मुँह के बल।
है दशा यह कैसी! सोचो, जग के विद्यावान सब ॥५॥
६. जाके सतसंगत में गुरु के, हम ने पाया भेद को।
भेद वादी हम नहीं अब, छुट गया अभिमान सब ॥६॥

७. राधास्वामी नाम लो, साधन करो कुछ शब्द को।
पाओगे गुरु की दया से, रूप का तब ज्ञान सब ॥७॥

—❀❀—

सोलहवीं कथा

नारद ऋषि

ईश्वर ने नारद नामक एक दासी पुत्र ऋषि को अपना प्यारा भक्त बनाया और उसे दया पात्र मान कर उसको दया दृष्टि से देखा। नारद को घमन्ड हो गया कि मुझसे अधिक ईश्वर का कोई भी भक्त नहीं है। यह घमण्ड ईश्वर को बुरा लगा और उसको शिक्षा देने की ठान ली।

नारद किसी दिन एक सन्तति हीन बनिये के घर गया। बनिये ने आदर सत्कार किया। नारद ने कहा 'जो इच्छा हो मुझ से मांग। बनियां बोला 'कोई लड़का नहीं है। लड़का होता तो अच्छा होता ! नारद ने कहा बहुत अच्छा ! मैं ईश्वर का भक्त हूँ उससे कहूँगा।"

नारद ने ईश्वर से जाकर कहा ! ईश्वर बोला "यह काम ब्रह्मा का है। मैं उससे पूछूँगा।" जब ब्रह्मा से पूछा गया उस ने कहा इस के भाग्य में पुत्र नहीं लिखा गया।" नारद निराश होकर लौट आया। बनियां नारद की बात सुनकर निराश हुआ और चुपका हो रहा।

उस बनिये के घर दैव संयोग से दूसरे ही दिन कोई अवधूत पहुँचा। बनिये ने उसे भी अपनी सेवा से प्रसन्न किया। अवधूत बोला "मांग ! क्या मांगता है।' उसने कहा 'मेरे घर सब कुछ है। क्या मांगूँ ! हां लड़के वाले नहीं हैं। सो नारद कह गया है कि मेरे भाग्य में सन्तति नहीं है। फिर अब तुमसे क्या मांगना है।'

अवधूत बोला 'नारद और सारद ! जा एक दो तीन चार, तेरे घर चार पुत्र उत्पन्न होंगे !' यह कर वह तो चला गया। वहां फिर नहीं ठहरा।

चौथे वर्ष नारद फिर पहुँचा। बनिये के घर में चार लड़के खेलते हुये देखकर पूछा 'यह किसके लड़के हैं?' बनिये ने कहा 'यह मेरे लड़के हैं और एक अवधूत के आशीर्वाद से उत्पन्न हुये हैं।'

नारद को ईश्वर पर क्रोध आया। उसके पास पहुँचा। जी में आया कि उसे शाप दे। ईश्वर भांप गया। अपनी माया को प्रेरणा की। उसने नारद की मति पलट दी।

नारद देखता क्या है कि वह ईश्वर के साथ किसी निर्जन निर्जल और निराहार मरुस्थल में विचर रहा है। धूप कड़ी है, सूर्य तप रहा है, भूख प्यास से जान निकलने लगी।

नारद ने ईश्वर से कहा 'भूख प्यास बहुत सता रही है।

वह बोला 'यहां न नाज है न पानी। फल फूल तक भी तो नहीं हैं। आगे चलो सम्भव है कि दाना पानी मिल जाये।'

वह आगे बढ़े। किसी जगह कोई साधू झोंपड़ा डाल कर रहता था उसका नियम था कि पहले अतिथि को भोजन खिला कर तब आप खाता था। कई दिन से वहां कोई न आया था। यह भूखा प्यासा था। नारद और उसके साथी को देख कर प्रसन्न होगया।

नारद ने कहा 'भाई ! भूखे हैं, कुछ खिला दे।'

यह बोला 'ठहर जाइये ! अभी आपको पूरी खिलाता हूं।'

यह कह कर वह झोंपड़े में घुसा। लकड़ी और पानी नहीं था। आटा और घी रक्खा हुआ था। उसने घी से आटा गूँथा पांव में धोती लपेट कर घी से भिगो लिया और उसे ईंधन की जगह चूल्हे में डालकर और चकमक से आग बनाकर जला दिया।

फिर तवे में पूरी सेकने लगा। नारद तो भूख से व्याकुल हो रहा था। पूरी पकने की छन छनाहट के शब्द ने उसकी भूख को और भी तड़पा दिया। उसे धैर्य कहां! ईश्वर का हाथ पकड़ कर झोंपड़े के भीतर खींच लाया। देखता क्या है कि साधू का पांव चूल्हे में जल रहा है और पूरी पक रही हैं। बहुत ही चकित हुआ।

साधू ने पूरी परोसी। इसने पेट भर कर खाया। पानी की जगह घी पिया तब शान्ति आई और तृप्त होकर ईश्वर के साथ उस साधू से बिदा हुआ।

जब दोनों दूर आगये नारद ने पूछा 'भगवान्! यह कैसा आश्चर्य जनक दृश्य था?'

ईश्वर हँसा 'सुन नारद! यह प्राणी मेरा भक्त है और भक्ति के रस में चूर है। इसमें और मुझ में नाम को भी भेद नहीं है। तेरी भक्ति भेद के साथ है। इसकी अभेद है। ऐसे भक्त के मुँह से जो निकलता है मुझे मान न मान मानना ही पड़ता है। इनका वाक्य सिद्ध होकर रहता है। तू भक्ति का नियम पालता है। यह लोग नियम बद्ध नहीं होते। जिस अवधूत ने बनिये को चार पुत्र दिये वह भी ऐसा ही था। इनके सामने मेरी दाल नहीं गलती। अब बता! तेरी भक्ति सच्ची या इसकी?'

नारद की आंखें खुल गईं। पाँव पर गिरा और क्षमा माँगी उसकी भक्ति का घमण्ड टूट गया और माया ने अपनी लीला समेट ली।

शब्द

१. प्रेमी और प्रीतम नहीं दो, एक हैं और एक हैं।
कौन कह सकता है दो! उनमें नहीं 'तू' है न 'मैं' ॥१॥
२. तन को मन को धन को अर्पा, अपने प्रीतम के लिये।
आप मरकर सच्चे प्रेमी, प्रेम का जीवन जिये ॥२॥

३. 'मैं' जो कहता है अहङ्कारी, विकारी वह हुआ।
'तू' जो कहता है भरम के बस, अनाड़ी वह हुआ ॥३॥
४. तोड़ 'मैं' और 'तू' का बन्धन, मुक्त हो और शुद्ध हो।
रूप को समझेगा तब तू, ज्ञान पाकर बुद्ध हो ॥४॥
५ राधास्वामी ने दिखाया, प्रेम का रस्ता हमें।
प्रेम में जब लय हुये, फिर क्या सुनायें कह तुम्हें? ॥५॥

सत्रहवीं कथा

ईश्वर और जगत् की परीक्षा

ईश्वर ने देने को तो मनुष्य जाति को सब कुछ दे दिया ज्ञान, ध्यान, बुद्धि, विवेक, विद्या, बड़ाई, प्रतिष्ठा इत्यादि इत्यादि देने में कुछ कसर नहीं रक्खी। देवता इसपर ईश्वर की अपार दया देखकर तरसते हैं कि 'मनुष्य में कौन सी ऐसी बात है जिससे ईश्वर का मन उसकी ओर आकर्षित है।' इस रहस्य को वह अब तक भी नहीं जानते।

पर मनुष्य ने जैसा चाहिये वैसा ईश्वर की कृपा और दयालुता का लाभ नहीं उठाया।

ईश्वर को इच्छा हुई कि 'देखें जगत् की प्रजा को कितना ज्ञान है और साथ ही मनुष्य की जानकारी की भी परीक्षा की जाये।'

यह सोचकर वह पृथ्वी पर आया और मनुष्य का रूप धारण करके सब जीव जन्तु के ज्ञान की परीक्षा लेने लगा।

पहिले चिउँटी और दीमक इत्यादि से पूछा 'तुम्हारा शरीर क्यों डमरू के आकार का बना है? सर का भाग तो उजला है और नीचे का काला है।'

इन्होंने उत्तर दिया 'सर में बल बुद्धि विशेष है और नीचे

के भाग में उनकी न्यूनता है। यह उनके उजले और काले होने का कारण है। डमरू के आकार का शरीर इसलिये बना है कि दोनों में समता होती रहे।'

ईश्वर इन्हें बुद्धिमान पाकर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

तब उसने हाथी से पूछा 'तेरी सूँड़ क्यों बनी ? औरों को वह क्यों नहीं मिली ?'

हाथी ने कहा 'मेरा सर बड़ा है। टाँगें मोटी हैं। डील डौल भारी है। सूँड़ इसलिये बनी कि मैं आहार को बिना कठिनाई के खा सकूँ। मेरी सूँड़ में मेरी नाक भी है। उससे मैं आहार को पहिले सूँघकर तब ग्रहण करता हूं। यदि वह अशुद्ध और विष संयुक्त है तो उसे नहीं स्वीकार करता।'

ईश्वर इस बुद्धमानी के उत्तर से प्रसन्न हुआ।

फिर ऊँट से पूछा 'तेरा गला क्यों लम्बा है ?

वह बोला 'मेरी टागें लम्बी हैं। यदि ऐसा न होता तो मैं घास कैसे चर सकता !'

ईश्वर को सन्तोष हुआ।

फिर वह अण्डज, पिण्डज, उद्भज, स्थावर सब प्रकार के जीवों से प्रश्न करता और उत्तर लेता हुआ समझ गया कि मेरी सृष्टि ज्ञान की सृष्टि है ज्ञान सब जगह परिपूर्ण है।'

अन्त में वह मनुष्य के पास गया और पूछा 'मनुष्यो ! क्या तुम बता सकते हो कि तुम उलटे आकार के क्यों हो ?'

मनुष्य बोले 'उलटे नहीं हम सुलटे हैं।'

ईश्वर हँसा 'तुमने मेरा प्रश्न नहीं समझा। देखो तुम सृष्टि में उलटे वृक्ष हो। औरों की जड़ तो पृथ्वी में है तुम्हारी आकाश में है। तुम्हारे सरही में तुम्हारी जड़ है। और वृक्षों के पत्ते ऊपर की ओर रहते हैं। तुम्हारे पत्तो (अथवा अङ्ग) नीचे की ओर

झुके हुये हैं और वृक्ष ऊपर फल फूल लाते हैं तुम नीचे की ओर फल फूल देते हो। फिर उलटे हुये या नहीं ?'

मनुष्य सुन कर चकित हुआ। बात सच्ची थी । बोला 'हम यह नहीं जानते। ईश्वर ने हमारे बनाने में भूल की। उसका कान पकड़ना चाहिये ।

ईश्वर लज्जित हुआ। फिर पूछा 'क्या तुम जानते हो कि तुम्हारा शरीर दो घड़ों के रूप में क्यों जोड़ा हुआ है ?'

मनुष्य बोला 'घड़ा कैसे! यहाँ तो कोई घड़ा बड़ा नहीं है ?'

ईश्वर हँसा 'तुमने नहीं समझा। देखो एक घड़ा तो तुम्हारा सर है। दूसरा घड़ा तुम्हारा पेट है। दोनों के गले मिलाकर जोड़े हुये या नहीं है ?'

मनुष्य सुनकर चकित हुआ। बोला 'बात तो तुम सच कहते हो। हमारे बनाने में ईश्वर ने बड़ी भूल की हमसे न पूछो। उस अनाड़ी से यह प्रश्न करो।'

ईश्वर ने लज्जित होकर फिर पूछा "क्या तुम जानते हो कि तुम्हारे शरीर में आकाश कुण्ड, पवन कुण्ड, अग्नि कुण्ड, जल कुण्ड और पृथ्वी कुण्ड क्यों बने हैं ?"

मनुष्य बोला 'हम में कुण्ड उण्ड कुछ भी नहीं हैं। तुम यों ही कहते हो !'

ईश्वर हँसा 'देखो! तुम विचारते नहीं। तुम्हारा गला आकाश कुण्ड है। तुम्हारा हृदय पवन कुण्ड है। इसी से फेफड़ों के पङ्खा द्वारा वायु निकलती रहती है। तुम्हारी नाभि अग्नि कुण्ड है। उसमें जठराग्नि है जो आहार को पका पका कर रक्त मज्जा, चरबी, धातु वीर्य और ओजस के रूप में एड़ी से लेकर चोटी तक पहुँचाती रहती है। तुम्हारी इन्द्री (मूत्र स्थान) जल कुण्ड है। इसीसे पानी बहा करता है। तुम्हारी गुदा (मल स्थान)

पृथ्वी कुण्ड है। इसीसे मिट्टी मल के रूप में निकला करती है। तुम कैसे कहते हो कि तुम में कुण्ड नहीं हैं?'

मनुष्य चकित हुआ "बात तो तुम सच्ची कहते हो। ईश्वर ने बुरा किया जो हमारे शरीर को तत्वों का कुण्ड बनाया। जो वह यहीं मिलता तो हम उसकी भूल निकालते। बनाना था कुछ और बना दिया कुछ और! हम मनुष्य क्या हुये! कुण्ड स्थल हुये! वह दिखाई नहीं देता। मिले तो उसे बतायें!'

ईश्वर लज्जित हुआ और समझ गया कि मनुष्य बड़ा अज्ञानी है। इसे कुछ भी समझ नहीं है और वह उनके पास से चला गया।

—❀०❀—

शब्द

१—पाके नर जीवन न समझा, तत्व को और सार को।
क्यों बुरा कहते हो तुम? ईश्वर को और संसार को ॥ १ ॥
२—बुद्धि उसने दी तुम्हें, बुद्धी की शक्ती युक्ति दी।
क्यों बिगाड़ा पाके सब? परमार्थ और व्यवहार को ॥ २॥
३—देवताओं से भी उत्तम, उसने तुमको कर दिया।
तुम हुये कृतघ्न समझा तक न वार और पार को ॥ ३ ॥
४—कर लो सत्सङ्गत गुरू की, ज्ञान की दृष्टी खुलें।
लाओ तट पर नाव अपनी, छोड़कर मँझधार को ॥४॥
५—राधास्वामी की दया से, जन्म को करलो सुफल।
काटो बन्धन भर्म के और, त्यागो कारागार को ॥ ५ ॥

—❀❀—

अठारहवीं कथा

यथार्थ ज्ञान

ईश्वर को जब प्रतीत हो गया कि मनुष्य अज्ञानी है और भूल भ्रम में फँसा हुआ है तब उसके चिताने के लिये उसने बहुत

उपाय रचे। उसकी प्रेरणा से चटशालय, पाठशालय, विद्यालय और पुस्तकालय बने, उपनिषदों के राग गाये गये, दर्शन लिखे गये, योग युक्ति का प्रबन्ध हुआ।

ईश्वर ने सोचा 'अब की चल कर इन लोगों की परीक्षा करनी चाहिये जो अपने आपको ज्ञानी कहते हैं। देखें इनकी समझ बूझ कैसी है!'

यह सोचकर ईश्वर उनकी सभा में पहुंचा। वह शास्त्रार्थ कर रहे थे। उसने उनकी बातें सुनी, समझा 'इन्होंने तो अर्थ का अनर्थ कर दिया कैसे सम्भव है कि इनको यथार्थ ज्ञान हो? यह केवल वाचक ज्ञानी रह गये। अनुभव सम्पन्न नहीं हुये।'

जब इनके प्रश्नोत्तर हो चुके ईश्वर ने उनसे कहा 'ज्ञानियो! मैं तुमसे जिज्ञासा करने आया हूँ। समय हो तो कुछ मुझे भी समझा दो।'

ज्ञानी बोले 'तुम पूछो हम उत्तर देंगे।'

ईश्वर ने कहा 'मुझे केवल साधारण साधारण बातें पूछनी हैं। शास्त्रार्थ करना नहीं है।'

ज्ञानियों ने कहा 'साधारण वा असाधारण जो कहना हो कहो, हमको ज्ञान हो गया है। हम तुमको समझा देंगे।'

ईश्वर ने कहा 'शब्द में अर्थ रहता है। अर्थ शब्द के बाहर नहीं जाता। तुम लोग खींच तान कर के शब्द के बाहर जाते हो

वह बोले 'क्योंकर?'

ईश्वर ने कहा 'तुम 'ब्रह्म' को अचल मान रहे हो। 'ब्रह्म' वृह=बढ़ना और मनन्=सोचना है। बढ़ना और सोचना चल के लक्षण हैं। वह अचल कैसे ठहरा?'

ज्ञानियों से कुछ उत्तर न बन आया।

ईश्वर बोला 'यों ही 'उपासना' का अर्थ केवल सङ्ग करना है (उप=निकट और आस=बैठना)। तुम इसे कुछ का कुछ

मानने लगे हो। 'माया' का अर्थ बुद्धि मात्र है (मा=माप और या=यन्त्र) तुम कुछ का कुछ समझाते हो। 'परब्रह्म' का अर्थ परे का ब्रह्म या पहिला ब्रह्म है जो सदा चलायमान् और चल रूप है। तुम उसे कहते हो कि वह अचल है। शब्दार्थ तो कुछ है और तुम समझते और समझाते कुछ हो। कैसे सम्भव है कि तुमको यथार्थ ज्ञान हो सके ?'

ज्ञानियों ने कहा 'हम केवल यौगिक अर्थ लेते हैं रूढ़ि नहीं

ईश्वर बोला 'यौगिक अर्थ भी रूढ़ि अर्थ ही से निकलते हैं। तुम इस पर विचार नहीं कर रहे हो। अनर्थ हो रहा है और आगे चलकर यह अनर्थ महा हानिकारक होगा। यों ही तुमने उपनिषद् और दर्शनों के अर्थों का अनर्थ कर रक्खा है। मैंने तुम्हारी सब परिभाषाओं को सुना। सबकी ऐसी ही उल्टी प्रणाली है कहो यह भूल है कि नहीं।

ज्ञानी निर्पक्ष थे। बोले तुम सच कहते हो। फिर क्या करें ? यह प्रणाली तो चल खड़ी हुई।'

ईश्वर बोला 'यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना हो तो वाचक ज्ञानी ही न बनो। पहिले कुछ दिनों साधन करो। जब साधन सम्पन्न हो जाओगे तब अनुभव सम्पन्न बनोगे। मैं आरण्य (बन) में रहता हूँ। मेरे पास आओ, मेरे साथ बैठो। यह उपासना होगी ! फिर मैं तुमको तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देकर तुमको उपदेश की विधि बताऊँगा। उप=निकट और देश=जगह है। जब तुम्हारी बुद्धि अन्तर में जगह पायेगी तब आप साक्षात्कार होने लगेगा।'

ज्ञानियों ने ईश्वर से उसका पता पूछा। उसी समय बन में चले गये। साधन किया। तब ईश्वर की उपासना की। उपदेश प्राप्त हुआ और इस प्रकार उनको यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि हुई। ज्ञान प्राप्त करने की पहिली सीढ़ी साधना है। वह कृतकृत्य हुए और ईश्वर को धन्यवाद दिया।

शब्द

१. जाओ गुरु के पास बैठो, और बचन उनके सुनो।
जो सुनो उसको विचारो, जो विचारो वह गुनो ॥१॥
२. सुन के गुन के नित करो, बचनों को तुम उनके अहार।
हृष्ट होकर साधना से, कर लो सब साक्षात्कार ॥२॥
३. गुरु की सङ्गत बिन नहीं, अधिकार होता ज्ञान का।
जब तलक संगत न हो, मिटता नहीं मद मान का ॥३॥
४. मान मद अभिमान मन मत, के सभी समझो विकार।
मानी अभिमानी को कब सूझे, कभी सार और असार ॥४॥
५. राधास्वामी योग सीखो, जो सहज है और सुगम।
जीते जी पा जाओ मुक्ती, और बना लो निज जनम ॥५॥

उन्नींसवीं कथा

शास्त्रार्थ

ईश्वर ने देखा कि मनुष्यों में बड़ी असावधानी फैली हुई है। सोचा क्या उपाय किया जाये कि इनमें शान्ति आ जाये।

उसने सब से पहिले उनकी ओर दृष्टि की जो अपने आप को सब से श्रेष्ठ उत्तम ज्ञानवान और बुद्धिमान समझते थे और तत्ववेत्ता मान रहे थे। यह सब से अधिक अशान्त थे और रात दिन लड़ाई झगड़े में पड़े रहते थे। एक कहता था मैं सच्चा और दूसरा झूँठा है। दूसरा कहता था मैं सचाई पर हूँ। तू भूल भ्रम में पड़ा हुआ है। दोनों ही को यथार्थ में सत् और असत् का ज्ञान नहीं था।

ईश्वर घूमता फिरता हुआ काशी में आया। एक जगह द्वैतवादियों और अद्वैतवादियों का दंगल हो रहा था। और सब अपनी बुद्धि के बल से अपने पक्ष के सिद्ध करने पर तुले बैठे थे।

ईश्वर आया। चुपचाप एक कौने में बैठकर उनके कर्त्तव्य

और दाँव पेंच देखने लगा। युद्ध तो युद्ध ही है और फिर पक्ष और पक्षपात की लड़ाई का क्या कहना! दृश्य मनोरंजन अवश्य था परन्तु किसके लिए? इनके लिए नहीं। यह तो अशान्त थे और इनके मत में केवल यही एक भाव व्याप्त था कि 'हम को जय प्राप्त हो और हमारे विरोधी परास्त हों।' इसको छोड़कर और कोई भाव उनमें नहीं था। ईश्वर तो साक्षी रूप धारण करके गया था। उसे इनके खेल के देखने से सुख था। और यह सबके सब दुखी थे।

एक कहता था 'जो कुछ है ब्रह्म है, ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

दूसरा कहता था 'ऐसा सम्भव नहीं है। ब्रह्म है और ब्रह्म के साथ माया भी है। बिना माया के रचना कदापि नहीं हो सकती। यह सृष्टि नियम के प्रतिकूल है।

दोनों दल के लड़ाके अपनी अपनी युक्तियां प्रगट करते थे।

६ घण्टे तक लड़ाई रही और इस शास्त्र युद्ध का परिणाम अन्त में कुछ नहीं निकला। कोई किसी की बात मानता तो था नहीं। ऐसी दशा में निर्णय भी हो तो कैसे हो!

ईश्वर भी उस समय उनके जैसा रूप धारण करके गया था। लोगों की दृष्टि इसकी ओर गई। यह चुपचाप सब की सुनता रहा। बोला कुछ भी नहीं। दोनों दलों के विद्वानों ने इसके रूप से आकर्षित होकर इससे पूछा महात्मा आप स्वरूप से बुद्धिमान प्रतीत होते हैं। आप क्यों नहीं मुँह खोलते! आप भी कुछ कहिये।'

ईश्वर हँसा 'कहूँ भी तो किससे कहूँ! कोई मानने और सुनने वाला हो तो बात भी कही जाये। जब सब के सब अपने अहङ्कार में चूर हो रहे हैं तो मेरी सुनेगा कौन! इससे तो चुप

ही रहना अच्छा है। तुम खेल रहे हो। मैं तुम्हारा खेल देख रहा हूँ। खेल तो खेल ही है। खेल खेलाड़ी का पैसा मदारी का! तुम खेल खेलो और मैं तुम्हारा खेल देखूँ।'

वह बोले 'आप इसे खेल समझ रहे हो?'

ईश्वर ने कहा 'खेल नहीं तो क्या है! यह बच्चों का खेल है। मैं इसे खेल से अधिक कोई और प्रतिष्ठित नाम नहीं देता और न देना चाहता हूं।'

वह चकित हुए, पूछा 'आप किस पक्ष के साधू हो?

ईश्वर ने हँस कर उत्तर दिया 'पक्ष और साधू! तुम ही कहो और तुम ही सुनो! यह भी बच्चों जैसी बात है।'

वह मन में लज्जित होकर बोले 'फिर आप यह बताइये कि द्वैतवादी सच्चे हैं कि अद्वैतवादी?'

ईश्वर हँसा 'सच्चे होंगे तो दोनों ही सच्चे और झूठे होंगे तो दोनों ही झूठे होंगे। मैं क्यों किसी का पक्ष करने लगा!'

वह बोले 'सत् वस्तु तो जब होगी एक ही होगी।'

ईश्वर हँसा 'जब सत् वस्तु एक होगी तो फिर यह असत् आ कहां से गया? तुम इस पर भी विचारते हो कि नहीं!'

वह बोले 'प्रकाश सत् पदार्थ है। ज्ञान सत् है।'

ईश्वर मुस्कराया 'अँधेरे के बिना प्रकाश की समझ किसको कभी आई है! और अज्ञान के बिना ज्ञान किसे प्राप्त हुआ है?'

वह लज्जित हुये और बात भी कुछ सच्ची ही थी जो उनके हृदय में घर कर गई।

थोड़ी देर चुप रह कर वह बोले 'आप के वचन प्रभावशाली होते हैं। हमको कुछ उपदेश कीजिये। वाद विवाद और शास्त्रार्थ बहुत कुछ हो चुका। और नहीं तो हमको आप जैसे महात्मा के संग का तो कुछ लाभ प्राप्त हो।'

वह हँसा और यह शब्द पढ़ कर सुना दिया:—

शब्द

एक कहूं तो है नहीं, दूजा कहूं तो गार।
जैसा है तैसा रहै, कहै कबीर विचार॥
एक कहूं तो क्यों कहूँ! जब अनेक चित भास।
जैसा है तैसा रहै, कहै कबीरा दास॥
सत् कहूँ तो क्यों कहूँ, असत् जो व्यापा मन।
सत् और असत् के बीच लख, कहै कबीर बचन॥
चित्त कहूं तो चित्त है, अचित कहूँ तो अचित्।
चित् और अचित् के मध्य में, दे कबीर तू चित्॥
आनन्द कहूँ तो क्यों कहूं, दुख की जब परतीत।
दुख सुख दोनों त्याग दे, यह कबीर की रीति॥
ज्ञानी मूल गँवाइया, आप बना करता।
ताते अज्ञानी भला, जो सदा रहे डरता॥
मो में एति सकत कहां, गाऊँ गला पसार।
बन्दे को इतना घना, पड़ा रहे दरबार॥
द्वैत नहीं अद्वैत नहिं, नहिं सो द्वैताद्वैत।
कोई कहे शुद्ध द्वैत है, कोई शुद्धा द्वैत॥
शुद्धा शुद्ध के भर्म में, भर्म रहा संसार।
तत्व परख की गम नहीं, कहे कबीर पुकार॥
पच्छा पच्छि के बन्ध में, बँधी सकल दुनियाय।
सांच कहूं माने नहीं, झूँठे जग पतियाय॥
तत्व एक है एक है, एक से नाहीं भिन्न।
एक ही में है अनेकता, कबीर लख लख गिन॥
एक कहा तो दो हुआ, दो से सहस हजार।
टांट उलट दे एक का, किसका करे विचार॥
सहस कहा तो एक है, सहस एक से होय।

निज स्वरूप जब लख लिया, नहीं एक नहिं दोय ॥
मूरख के समझावते, ज्ञान गांठ का जाय ।
कागा होय न उज्जला, चाहे सौ मन साबुन लाय ॥
पण्डित की री पोथियां, ज्यों तीतर का ज्ञान ।
औरन न सगुन बतावहीं, अपना फन्द न जान ॥
पण्डित की री पोथियां, लोखरी का व्यवहार ।
और न सगुन बतावहीं, आप श्वान से हार ॥
पण्डित और मशालची, दोनों सूझे नाँह ।
औरन को करें चांदना, आप अँधेरे माँह ॥
पण्डित की री पोथियां, ज्यों अन्धे की नाव ।
अन्धे मिल सब बैठिया, जहाँ भावे ले जाव ॥
वस्तु कही ढूँढ़े कहीं, केहि विधि आवे हाथ ।
कहैं कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥
भेदी लिया जो साथ कर, दीन्ही वस्तु लखाय ।
कोटि जन्म का पन्थ था, पल में पहुँचा जाय ॥

यह कहा और ईश्वर उसी समय अन्तर्ध्यान हो गया। द्वैतवादी और अद्वैतवादी दोनों चकित रह गये। लोगों ने पूछा पेखी आरम्भ की 'यह कौन विलक्षण पुरुष था जो सहज सहज में तुमको ऐसा अमूल्य उपदेश सुना गया? यह तो दर्शन योग्य था और इसकी सङ्गति से हमारे सारे संशय बात की बात में दूर हो जाते।'

किसी ने कहा 'यह ईश्वर ही रहा होगा। बिना ईश्वर के ऐसी बात कौन कर सकता है!'

कोई बोला 'यह महा ज्ञानी और तत्त्ववेत्ता था। ऐसे पुरुष संसार में दुर्लभ होते हैं।'

उस मेले में एक साधारण मनुष्य बैठा हुआ था। उसने

कहा 'हो न हो यह कबीर साहिब, परम संत, परम गुरू रहे होंगे ! तब ही तो इनके दोहों में कबीर का नाम आता है।'

लोगों ने पूछा 'यह कबीर कौन है ?'

एक पुरुष ने उत्तर दिया 'नूरा नामक जुलाहा और नोमाँ नामक जुलाहिन की गोदी में कोई कमल स्वरूप खेलता हुआ बालक प्रगट हुआ है जो राधास्वामी का चेला कहलाता है। उसके सामने किसी की दाल नहीं गलती। वह अपने गुरू को भी गुरू बन कर चिताता रहता है। चेला होकर गुरू को चिताये यह बात केवल इसी कबीर के विषय में सुनी गई है। संसार में पहिले ऐसा दृश्य कभी किसी ने नहीं देखा था,

एक अद्वैतवादी बोला 'कबीर का नाम तो मैंने भी सुना है। वह तो जाति का मुसलमान है।'

एक द्वैतवादी ने कहा 'वह न हिन्दू है न मुसलमान। हाँ दोनों को चिताता रहता है और जो उसकी शरण में चला गया फिर शान्ति और निर्भ्रान्त हो जाता है।'

सभा समाप्त हुई। कुछ लोग जो सच्चाई के प्रेमी थे कबीर चौरा में पहुंचे और कबीर को गुरू धारण किया। बहुत से लोग जो छूत छात जाति पांत और मत मतांतर के पाखण्ड में उलझे हुये थे कहने लगे 'कबीर चाहे यथार्थ-वक्ता ही क्यों न हो परन्तु हम उसकी कभी न सुनेंगे और न मानेंगे।'

वह लोग कबीर चौरा में नहीं आये।

शब्द

१. गुरु हुये संसार में परगट, गुरु से ज्ञान लो।
छोड़ दो पाखण्ड को, गुरुमत की महिमा जान लो ॥१॥
२. गुरु हैं ब्रह्मा गुरु हैं विष्णू गुरु ही शिव के रूप हैं।

ब्रह्मगुरु परब्रह्म गुरु हैं, गुरु को सब कुछ मान लो ।।२।।
३. ज्ञान है आधार गुरु के, भक्ति गुरु के आसरे।
गुरु के सन्मुख जाके तुम सब, गुरु के नाम का दान लो ।।३।।
४. आया शुभ अवसर, न इस अवसर को छोड़ो हाथ से।
गुरु से मिलकर जीते जी, कैवल्य पद निर्वाण लो ।।४।।
५. राधास्वामी की दया से, गुरु की आई अब समझ।
जन्म को कर लो सुफल, निज रूप को पहिचान लो ।।५।।

बीसवीं कथा

निष्काम कर्म

ईश्वर ने किसी देश में राजा का रूप धारण किया। ईश्वर के राज्य का क्या कहना! प्रजा सुखी! देश बसा हुआ! न्याय की यह अवस्था थी कि सिंह और बकरी एक घाट पानी पीते थे। कोई भी इस राज में दुखी नहीं था।

यों तो इस राज की सारी प्रजा को अपने राजा के साथ प्रेम भाव था परन्तु एक छोटी श्रेणी के मनुष्य की भक्ति बहुत ही प्रशंसनीय थी। वह चाहता था कि सदा राजा के सन्निकट रह कर उसका दर्शन किया करे और उससे अलग न हो। उसने बहुत सोचा विचारा परन्तु कोई बात समझ में नहीं आई। अन्त में किसी से सुन पाया कि 'जो कोई साधु की सेवा करते हैं उनको साधू कोई न कोई उपाय बता देते हैं और उनकी मनोकामना पूरी हो जाती है।"

यह सुनकर वह किसी साधू के पास गया और उसकी सेवा टहल करने लगा। कई महीने बीत गये। एक दिन साधू ने प्रसन्न होकर उससे पूछा "भाई! तू क्या चाहता है? और किस प्रयोजन से यहां आया है?"

वह बोला महाराज ! मैं और कुछ नहीं चाहता। केवल ऐसा उपाय बता दीजिये कि अपने देश के राजा के पास रहकर उसका दर्शन किया करूँ। मेरी यही अभिलाषा है।"

साधू हँसा "राजा के पास तेरा क्या काम है ? और वहाँ राजा के कर्मचारी तुझको कैसे पहुंचने देंगे ? तू धनहीन, बुद्धिहीन और युक्तिहीन साधारण मनुष्य है।"

यह बोला "चाहे कुछ हो। मुझे नित्य प्रति राजा का दर्शन मिलना चाहिये, आप मेरी सहायता न करोगे तो फिर कौन करेगा?"

साधू ने विचार कर उससे कहा "यदि तू निष्काम कर्म करे तो सम्भव है कि तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

इसने पूछा 'निष्काम कर्म क्या होता है ?'

साधू ने उत्तर दिया 'काम करना और काम के फल की इच्छा न करना 'निष्काम कर्म' कहलाता है।'

मनुष्य ने कहा 'मैं ऐसा करूँगा।'

तब साधू बोला 'राजभवन बन रहा है, बहुत से लोग उसमें काम कर रहे हैं, जा तू भी काम कर परन्तु दाम न लेना और तुझे राजा का दर्शन अवश्य प्राप्त हो जायेगा।'

यह प्रसन्न होकर वहां गया। प्रातःकाल जाता और सन्ध्या समय चला आता। जब चिट्ठा बटता यह चुपके से खिसक जाता। इसमें दो सप्ताह बीत गये। एक दिन राजभवन के कारबारी ने पूछा 'इतने मनुष्य प्रतिदिन काम करते हैं परन्तु एक मजदूर को दाम नहीं दिये जाते। इसका क्या कारण है ? और वह कौन है ?'

कई दिनों तक उसका पता नहीं लगा। एक दिन जब वह बांटने के समय खिसकने लगा किसी ने उसे पकड़कर कर्मचारी के पास पहुंचाया और उससे कहा 'यही वह मनुष्य है जो बिना दाम लिये काम करता है। इसे तीन सप्ताह काम करते हो गये।'

वह (मजदूर) बोला 'मैं एक पैसा भी न लूँगा। यों ही काम करूँगा।'

कारबारी ने पूछा 'क्यों ऐसा करता है ?'

उसने उत्तर दिया 'मुझे राजा से प्रेम है। मैं ऐसी ही सेवा करना चाहता हूँ।'

वह चकित हुआ। प्रधान के पास उसे ले गया वहाँ भी वैसे ही प्रश्नोत्तर हुये और उसने रुपया पैसा लेना स्वीकार नहीं किया। प्रधान चुप रहा। वह दो चार दिन पीछे आया और उसका काम देखा। यह मनुष्य सबसे अधिक काम करता था। और मन की सारी शक्ति काम में लगाता था। इसका काम बहुत ही सुन्दर हुआ करता था। प्रधान ने उसे बुद्धिमान और चतुर पाकर राज वाटिका और राज भवन का सारा काम उसके हाथ के नीचे सौंप दिया। फिर तो थोड़े ही दिन में उस जगह की ऐसी दशा हो गई कि उसमें फबन आ गई और सौन्दर्य्य की वर्षा होने लगी।

एक दिन राजा संयोग से नया महल देखने आया और इतना प्रसन्न हुआ कि प्रधान से पूछ बैठा 'यह काम कौन करता है ? ऐसा रमणीक स्थान इस राज्य में कोई भी नहीं है।'

प्रधान ने उस मनुष्य को राजा के सामने कर दिया।

राजा ने पूछा 'तू कब से यहां काम करता है ?'

उसने उत्तर दिया 'ढाई वर्ष से।'

राजा ने फिर पूछा 'तुझे क्या वेतन मिलता है ?'

मनुष्य बोला 'कुछ भी नहीं।'

राजा ने प्रधान की ओर दृष्टि की "इतना अच्छा काम ! और इसे कुछ न मिले ! यह क्या बात है ?"

प्रधान बोला "यह कुछ लेना नहीं चाहता। मनुष्य काम का है। यदि कुछ दबाव डालकर दिया जाये तो डर है यह काम छोड़कर भाग न जाये। फिर ऐसा मनुष्य लाखों रुपया देने से भी हाथ न आयेगा।"

राजा चकित हुआ 'क्यों भाई ! इस में क्या रहस्य है ?'

उस ने कहा 'मेरी यह इच्छा है कि आप का दर्शन किया करूँ । आप को छोड़कर कहीं न जाऊँ । एक साधू ने मुझे यह शिक्षा दी कि राजा की सेवा निष्काम होकर किया कर तब यह कामना पूरी होगी और तब से मैं यह काम करने लगा । आज आप का दर्शन प्राप्त हो गया । यही मेरी सेवा का पहिला फल है । अब आप के समीप रहने का भी फल प्राप्त हो जायेगा ।'

राजा चुप होरहा और चला गया । थोड़े ही दिन पीछे वाटिका और महल के बनने का काम पूरा हो गया । प्रधान से सूचना पाकर राजा फिर देखने आया । राजा ने भली भाँति देखा भाला और प्रसन्न होकर कहा 'यह स्थान स्वर्ग से कम सुन्दर और रमणीक नहीं है । मैं अब इसी में रहूँगा ।'

अब वह इसी राज भवन में रहने लगा । राजा उस मनुष्य से इतना प्रसन्न हुआ कि क्षण मात्र के लिये भी उसे अपने से अलग नहीं होने देता था परन्तु जिस दशा में वह मनुष्य रहता था वह राजा को नहीं भाती थी । एक दिन राजा ने उस से कहा 'भाई ! अब तू मेरा मन्त्री हो गया । देख ! तेरी सम्मति के बिना कुछ काम काज नहीं करता और जो कुछ तू कहता है वह बात यथार्थ होती है जिस से मेरी प्रजा की छोटी बड़ी श्रेणी के सब लोग सुखी और प्रसन्न रहते हैं । तू मुझ से अपने काम काज के बदले में रुपया पैसा नहीं लेता है न सही ! पर अब तू मेरे जैसा हो गया है । इसलिये मैं चाहता हूँ तेरे वस्त्र रहन सहन इत्यादि मेरे जैसे हों । इस के निमित्त मैं अपने देश का कुछ भाग तेरे लिये अर्पण कर देता हूं । इस से तेरे बाल बच्चों का पालन पोषण भी होता रहेगा और तू सुखी रहकर मेरे साथ बना रहेगा ।'

उसने राजा की बात स्वीकार कर ली और दोनों मित्र के

समान आनन्द पूर्वक रहने लगे।

निष्काम कर्म्म करने का फल ऐसा होता है।

उसने राजा की बात स्वीकार कर ली और दोनों मित्र के समान आनन्द पूर्वक रहने लगे।

निष्काम कर्म करने का फल ऐसा होता है।

शब्द

गुरू ने चिताया, जग में आकर।

(१) नर शरीर सतगुरु ने धारा, जीव निबल को दिया सहारा।
भव सागर के पार उतारा, अपना साँचा रूप दिखा कर॥

(२) शब्द योग की बिधी बताई, सुख मन मध्य राह दरसाई।
सोई सुरत को लिया जगाई, दया से अपने अंग लगा कर॥

(३) सतसंग द्वारा बचन सुनाया, सहज रीति से जीव चिताया।
अपना आपा उसे दिखाया, अनहद बानी घट में सुना कर॥

(४) सहज कमल तिरकुटी लखवाई, सुन्नमहासुन गति परखाई।
भँवर में माया काल लखाई, अन्त में सत पद धाम में लाकर॥

(५) अगम अलख के पार अनामी, संत कहें जिसे राधास्वामी।
उसके चरन सरोज नमामी, प्रीत रीत परतीत दिला कर॥

इक्कीसवीं कथा

चितावनी

ईश्वर ने देखा कि मनुष्य धार्मिक शिक्षा पा कर भी भ्रम में फँस गया। ज्ञानी तो भूल में पड़े ही थे, भक्तों की मंडली

इनसे भी अधिक बहक गई, तब ईश्वर ने नर शरीर धारण किया और भेष बदल कर मनुष्यों की बस्ती में आया। उसने इस समय ऋषी का रूप धारण किया, जिस जिस ने सुना उसके दर्शन के लिये आये और मत मतान्तर के विषय में प्रश्नोत्तर करने लगे, सब की बातें लंबी चौड़ी होती थीं, यह लोग प्रश्न करके सावधान चित हो कर उत्तर को भी नहीं सुनते थे, न इन में धीरज था न संतोष ! ईश्वर ने अभी अपनी बात पूरी भी न करने पाई थी कि वह बीचसे काट कर अपनी कहने लग जाते थे, ईश्वर ने सोचा 'यह प्रश्न के उत्तर तक तो सुनते नहीं फिर मानेंगे कैसे।'

तब उसने उनसे पूछा, 'तुम ने गुरू भी धारण किया है कि सब के सब निगुरे हो ?' किसी ने कहा 'हमने गुरू किया है किसी ने कहा हम ने अब तक गुरू नहीं धारण किया !'

जिन्होंने अपने आप को गुरुमुख बताया, ईश्वर ने उनसे कहा 'जब तुम ने गुरू किया है तो फिर मुझ से प्रश्न क्यों करते हो, तुम्हारा गुरू किस रोग की औषधी है, उससे जाकर पूछो गुरुमुख होकर दूसरे से प्रश्न करना गुरू का अपमान करना है, यह गुरू से विमुख होने का चिन्ह है, जाओ उससे प्रश्न का उत्तर लो

यह बोले, 'हमारा गुरू कनफुक्का है, वह कुछ समझाता बुझाता नहीं है निर्त्तर भट्टाचार्य है, गुरू करने की प्रणाली चल गई उसने सीखा सिखाया मंत्र हमारे कान में फूँक दिया हम चेला हो गये। मंत्र तो हम जानते हैं, उसका सुमिरन भी करते हैं, किंतु मन संशय से भरा रहता है। यह कारण है कि जब कोई साधू सन्यासी आता है तो उससे पूछने गछने की सूझती है।'

ईश्वर ने कहा फिर तुमने अब तक गुरू नहीं किया यह झूठी परम्परा है, इससे काम नहीं बनेगा।

(१) झूठे गुरु की पक्ष को, तजत न कीजे बार ।
भेद न पावे शब्द का, भटके बारम्बार ॥१॥
(२) सांचे गुरु की पक्ष में, मन को दे ठहराय ।
चंचल से निश्चल हुआ, शब्द मांह लव लाय ॥२॥
(३) गुरू मिले संशय हटा, दुचिताई गई भाग ।
चित का सहज निरोध कर, रहा चरन में लाग ॥३॥

उन सब ने कहा 'आप समझदार ज्ञानी जान पड़ते हो, इस लिए आप के कथनानुसार अब आप ही को गुरू धारन करने की इच्छा है।'

ईश्वर ने उनको दीक्षा दी। इन पढ़े लिखे मनुष्यों की देखा देखी जो पढ़े लिखे नहीं थे वह भी शरण में आये, तब ईश्वर ने उनको चित के साधन की विधी सिखाई, और सत्संग करा कर उनके संशय और विपर्य की जड़ खोद कर फेंक दी और वह इसी संसार में सुख आनन्द से अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

इनमें से एक आदमी शास्त्रों का जानने वाला भी था एक दिन समय पाकर कहने लगा, 'भगवन्! आप की कृपा से हमारा जीवन सुधर गया, चित की चंचलता गई, मन की दुबिधा मिटी हमारा जन्म सुफल हो गया, और हम शरीर के बन्धन में रहते हुए भी मुक्त, निर्द्वन्द और उदासीन हैं, किंतु यदि आप की आज्ञा हो तो हम और अज्ञानी जीवों के हितार्थ आप से कुछ प्रश्न करें

ईश्वर ने हँसकर कहा, 'जब तुम ने मुझ को गुरू धारण कर लिया तो अब प्रश्न करने कहाँ जावोगे जो कुछ जी में आवे पूछ लो। मैं सहज में तुमको समझा दूँगा।'

उसने पूछा (१) 'ईश्वर क्या है और जीव क्या है?' ईश्वर ने उत्तर दिया 'माया जिसके आधीन हो वह ईश्वर और जो माया के आधीन हो वह जीव है।

मनुष्य फिर बोला—'ईश्वर क्या है और जीव क्या है ?'

ईश्वर ने कहा—'जिसमें ऐश्वर्य, बल, पराक्रम और स्वतंत्रता हो वह ईश्वर है और जिसमें परतन्त्रता हो और जिसका बल पराक्रम किसी और के आधीन हो अथवा जो किसी का सहारा ढूँढ़ता, सहारे रहता और सहारे पर काम करता वह जीव है।' और सुनो—

'जिसके लिए जन्म मरण नहीं हैं. जिसे इनकी चिन्ता तक न हो वह ईश्वर और जिसे जीने की इच्छा हो और मरने का भय लगा रहे वह जीव है !'

मनुष्य ने पूछा—(२) 'माया क्या है जिसने जीव को भरमा रखा है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया—'माया जीव की अपनी शक्ती, अपनी शक्ती की सामग्री और अपनी शक्ती का अज्ञान है।'

मनुष्य ने फिर कहा—'माया क्या है जिसने जीव को भरमा रखा है ?'

ईश्वर बोला—'माया मनुष्य की अपनी युक्ती का यन्त्र है जिससे वह सबकी माप तोल करता रहता है। यह माप तोल उसके अपने दुःख का कारण होता है किसी को वह बड़ा समझ कर उसकी बड़ाई की डाह करने लगता है। किसी को छोटा समझ कर उसकी छुटाई से घृणा करने लगता है। इससे भ्रम उत्पन्न होकर उसी को दुखी करता है।' और सुनो—

'माया जीव की अपनी बुद्धी है। दूसरी कोई वस्तु नहीं है। जीव को उसका यथार्थ ज्ञान नहीं है इससे वह प्रपंची बन जाता है और भ्रम में फँसा रहता है। गुरू की कृपा से जब समझ आ जाती है यह भ्रम दूर हो जाता है तब सुखी होता है।'

मनुष्य ने पूछा--(३) 'क्या माया जीव और ईश्वर दोनों में है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया--'हां, जीव और ईश्वर दोनों में माया है ।'

मनुष्य ने कहा--'क्या ईश्वर जीव दोनों ही में माया है ?

ईश्वर बोला--'माया दोनों में है ईश्वर की माया ईश्वरी समष्टि और जीव की माया जीवी (वेष्टी) है। बिना माया के न ईश्वर का काम होता है न जीव का ।'

मनुष्य ने कहा--'क्या ईश्वर और जीव दोनों में माया है ?'

ईश्वर बोला--'हाँ, परन्तु ईश्वर की माया अङ्ग सङ्ग रहती हुई साधारण है दुखदाई नहीं है । जीव की माया अज्ञान के वश उसके लिए दुखदाई हो जाती है। बलवान में बल तो अवश्य ही रहता है। कोई बलवान ऐसा होता है कि वह अपने बल की ओर ध्यान नहीं देता यह बलवान ईश्वर है। और कोई बलवान ऐसा होता है जो अपने बल की ओर ध्यान देता रहता है। ध्यान दो प्रकार का होता है एक अहंकार (बल का घमण्ड) दूसरे दीनता (बल की न्यूनता) का दुख। अहंकार और दीनता दोनों ही अभिमान के रूप हैं जो जीव में रहते हैं और उसे दुखी करते हैं। जीव जब गुरू द्वारा भक्ती करने लगता है तो यह अभिमान का दोष जाता रहता है तब उसे दुख सुख, जन्म मरन, बन्धन मुक्ती, किसी का भय नहीं रहता।

मनुष्य ने पूछा—(४) 'क्या ईश्वर और जीव दोनों में मन रहता है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया—'हाँ, मन दोनों में रहता है। मन नाम है मनन शक्ती इसके बिना काम कैसे होगा।

मनुष्य ने फिर कहा—'क्या ईश्वर और जीव दोनों में मन रहता है ?'

ईश्वर ने उत्तर दिया—'दोनों में मन न रहता तो जगत में सोचने का व्यौहार जो हो रहा है वह कैसे चलता !'

मनुष्य ने कहा—'क्या ईश्वर और जीव दोनों में मन रहता है ? थोड़ा और समझाइये।

ईश्वर बोला—'तुम्हारे प्रश्न का मन्तव्य यह है कि दोनों के मन में भिन्नता क्या है ? ईश्वर समुद्र के समान है उसमें मन की लहरें स्वाभाविक उठा करती हैं वह लाख उठा करें ईश्वर को उनसे हानि नहीं पहुँचती क्योंकि वह अपने रूप में स्थित रहता है परन्तु जीव की यह दशा नहीं है छोटे होने और छोटाई की समझ के दोष के कारण उसके मन में जो तरंगें उठती हैं वह उनका अभिमानी होकर उन्हीं में लम्पट हो जाता है और रेशम के कीड़े के प्रकार अपने धागों के उलझन में आप फँस फँसा कर अत्यन्त दुख को प्राप्त होता है यदि गुरु द्वारा भक्ती करके वह सर्व भौमिक और व्यापक का इष्ट धारन करके उसका अभिमानी बन जाय तो इस अभिमान का संस्कार धीरे धीरे उसे कुछ दिनों पीछे कुछ का कुछ बना देगा तब उसको दोष से मुक्ती हो जायगी।

मनुष्य चुप हो गया, ईश्वर ने समझा इन जीवों को आवश्यक चितावनी मिल गई और सतसंग करा कर जब वह जीवन मुक्त पदवी को प्राप्त होगये ईश्वर अन्तर ध्यान हो गया।

शब्द

—✻✻—

१. नहीं मैं जानता हूं, कौन हूं क्यों कर यहाँ आया ?
पड़ा क्यों काल की फाँसी में, क्यों, माया ने भरमाया ॥१॥

—✻✻—

२. इधर भटका उधर भरमा कोई यह भेद बतलाये ।
बहुत पूछा किसी ने मेरी यह गुथ्थी न सुलझाया ॥२॥

—✻✻—

३. पढ़ा पोथी गया तीरथ किया जप तप रहा बन में ।
न सन्यासी उदासी और बन बासी ने समझाया ॥३॥

—✻✻—

४. न निकला काम तब मन में उदासी आ गई मेरे ।
चरन राधास्वामी के पकड़े गुरू ने तब ये बतलाया ॥४॥

—✻✻—

५. नहीं माया अलग तुझसे ये माया तेरी बुद्धी है ।
समय है काल, माया बस, समय से आप घबराया ॥५॥

—✻✻—

६ सुरत को साध घट में धँस, किया कर शब्द का साधन ।
तो यह समझेगा तू चेतन है, चेतन चेतना भाया ॥६॥

—✻✻—

७. सुलझ तब वह गई गुथ्थी, समझ निज रूप की आई ।
सुखी हो राधास्वामी संगत् में गुन सतगुरु गाया ॥७॥

✻०✻—